

**THE BOOK WAS
DRENCHED**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180078

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83.1/S25K Accession No. G.H.2364

Author सत्येन्द्र शर्मा

Title कृषासा और किरण 11956

This book should be returned on or before the date
last marked below.

कुहासा और किरण

सन् १९४७-५१ में
लिखित

सत्येन्द्र शर्मा की अन्य प्रकाशित रचनाएँ

नील कमल

(कहानियाँ)

तार के खम्भे

(एकांकी नाटक)

कुंदमाला

(नाट्य-रूपांतर)

कुहासा और किरण

सत्येन्द्र शर्मा

नीलाभ प्रकाशन गृह

इलाहाबाद

प्रथम संस्करण : नवम्बर १९५६

मूल्य ३)

प्रकाशक

नीलाभ प्रकाशन गृह, ५. खुसरोबाग रोड, इलाहाबाद

मुद्रक

भार्गव प्रेस, इलाहाबाद

श्रद्धेय बाबूजी श्री भगवतीचरण वर्मा को,
सादर, साभार.

अपनी बात

‘नील कमल’ मेरी कहानियों का पहला संग्रह था, जो सन् १९४६ में प्रकाशित हुआ था। जिन परिस्थितियों में वह छपा था, उन का जिक्र आज मनोरंजक भी है और दुःखद भी। इस कारण अधिक न कह केवल इतना ही कहना चाहूँगा कि सही व्यवस्था न होने के कारण उस पुस्तक का उचित वितरण न हो सका; और न ही पहला संस्करण समाप्त होने पर वह दोबारा प्रेस में गयी। ‘नील कमल’ के बाद की कहानियों को छपवाने का मैं जब भी विचार करता, यही ध्यान आता कि पहले ‘नील कमल’ का दूसरा संस्करण हो जाय। नतीजा ये हुआ कि दूसरे संग्रह की ये कहानियाँ इसी तरह पड़ों रहीं और पाँच वर्ष का लम्बा अरसा गुज़र गया। बहुत विलम्ब हो गया है, ये महसूस कर अब ‘नील कमल’ के दूसरे संस्करण की प्रतीक्षा किये बिना, मैं यह संग्रह प्रकाशित करवा रहा हूँ। ‘नील कमल’ के बाद की—यानी १९४७ से १९५१ तक की—कहानियाँ इस में संग्रहीत हैं। ये कहानियाँ ‘आजकल’, ‘सुमित्रा’, ‘इलाहाबाद युनिवर्सिटी हिंदी मेगज़ीन’, ‘रश्मि’, ‘उत्तरा’, ‘धर्मयुग’, ‘प्रतीक’ और ‘कल्पना’ में यथा-समय प्रकाशित हो चुकी हैं। कुछ कहानियों का गुजराती, मराठी, उर्दू और अंग्रेज़ी में भी अनुवाद हो चुका है। ‘निष्कर्ष’ ‘हिंदुस्तान’ द्वारा आयोजित ‘कहानी प्रतियोगिता—१९५०’ में पुरस्कृत हो चुकी है। कुल मिला कर ये संग्रह पाठकों को रुचेगा, इसी विश्वास के साथ मैं इसे आपके सामने प्रस्तुत कर रहा हूँ।

संग्रह की एक कहानी ‘सूक्ष्म बात’ की भी एक छोटी-सी कहानी है। सन १९५० की गर्मियों में मसूरी में मेरे मित्र विक्रम सिंह ने मुझे इस कहानी का आइडिया ये कह कर सुनाया कि उन्होंने एक विदेशी

कथा-संग्रह में इस आशय की कहानी पढ़ी थी, जो उन्हें बहुत ज़्यादा पसंद आयी थी। कहानी में जो बात कही गयी थी, वह मुझे भी दिलचस्प लगी। मैं ने वह कहानी पढ़ने की इच्छा प्रकट की; किंतु बहुत खोज करने पर भी मसूरी या देहरादून में वह न मिल सकी। कहानी का आइडिया मेरे दिमाग में घूमता रहा और आखिर एक दिन तंग आ कर उस से मुक्ति पाने के लिए मैं ने बैठ कर एक नई ही कहानी गढ़ दी और मार-मुक्त हो गया। कहानी 'प्रतीक' (जनवरी—५२) में छपी। एक वर्ष बाद बम्बई में, एक साहब ने परिचय होने पर मुझे बतलाया कि सुप्रसिद्ध फ्रांसीसी कथाकार मोपांसा की 'रोज़' कहानी पर आधारित मेरी कहानी 'सूक्ष्म बात' उन्हें और उनके मित्रों को बहुत पसंद आयी थी। मुझे विस्मित देख उन्होंने मुझे 'रोज़' कहानी पढ़ने को दी। 'रोज़' पढ़ कर मुझे लगा कि मुझे अपनी कहानी विनष्ट कर देनी चाहिए। परंतु अपनी चीज़ से एक स्वाभाविक मोह होता है—और मैं उस मोह से बरी नहीं हूँ—मैं 'सूक्ष्म बात' को नष्ट नहीं कर सका। कहानी इस संकलन में जा रही है—साथ ही मेरी स्वीकारोक्ति भी कि इस कहानी में जो भी गुण हैं, वह महान कथाकार मोपांसा के हैं; और जितने भी दोष हैं वे सब मेरे हैं।

इन कहानियों का विवेचन स्नेही बंधु ओंकारनाथ श्रीवास्तव ने किया है। उन्हें धन्यवाद देना महज़ औपचारिकता होगी इस कारण यह स्वीकार कर, कि मैं उन का आभारी हूँ, मैं खामोश ही रहना पसंद करूँगा।

पुस्तक को इस रूप में प्रस्तुत करने का सारा श्रेय भार्गव प्रेस के श्री रामसिंह को है। जिस स्नेह से उन्होंने ये पुस्तक तैयार की है उसके लिए वह धन्यवाद के अधिकारी हैं।

विवेचन

‘सत्येन्द्र की कहानियों में एक विशेषता है जो उनकी अपनी है । बड़ी अच्छी कहानियाँ हैं ।’

‘कुहासा और किरण’ की ‘प्रेस-कॉपी’ मुझे पढ़ते देख मेरे एक मित्र ने अनायास ही ऐसा कहा । मित्र महोदय की साहित्यिक अंतर्दृष्टि में चूँकि मुझे काफ़ी विश्वास है इसलिए मैं ‘प्रेस कॉपी’ पढ़ने में कुछ और सजग हो गया । सोचने लगा कि वह विशेष ‘विशेषता’ कौन-सी है ?.... नये सिर से ध्यान देना शुरू किया तो सब से पहले मेरा ध्यान ‘प्रेस-कॉपी’ के बहिरंग पर ही गया । सुंदर, चिकने कागज़ पर हाशिया छोड़ कर शीर्षकों के नीचे गाढ़ी स्याही से लाइन खींच कर नीचे मूल कहानियाँ अत्यंत सावधानी के साथ मोती जैसे अक्षरों में लिखी गयी थीं । मुझे जैसे एक सुराग़ मिल गया । सावधानी—डर को हृद तक पहुँचने वाली सावधानी—ही वह विशेषता थी जो कहानियाँ पढ़ते समय बार-बार मेरे मन में टकराती थी, लेकिन एक शब्द बन कर मुखरित नहीं होती थी । उर्दू की एक प्रसिद्ध गज़ल का मतला है—

“कुछ ऐसा आलम होता है जब फ़िक्र सुखन मैं करता हूँ ।

अपने ही खयालों को हमदम मैं हाथ लगाते डरता हूँ ।”

खयाल को लेख में बाँधते समय हृद दरजे की सावधानी बरतना ही एक प्रकार के डर का रूप धारण कर लेता है, जिस का ज़िक्र शायर ने अपने शेर में किया है । यह कहने की ज़रूरत नहीं है कि इस डर के साये में शायर ने जो गज़ल कही है वह ऊँचे दरजे की है । ‘कुहासा और किरण’ के लेखक ने भी अतीव सावधानी से इन कहानियों का सृजन किया है । उस के प्रयत्न की यह विशेषता हमें प्रत्येक कहानी में व्याप्त मिलती है । स्थानिक डिटेल्स

या बहुविध ज्ञान का आतंक जमाने का लेखक ने कहीं भी आग्रह नहीं किया है; बल्कि अपनी जानकारी को उसने जहाँ भी कहानियों में प्रतिबिम्बित किया है वहाँ उस का ध्यान अपने कथ्य की प्रामाणिकता पर ही सर्वाधिक रहा है। स्थूल रूप से यह प्रामाणिकता प्राप्त कर लेना—जैसे स्थान-विशेष का वर्णन, तिथि विशेष का वर्णन, चंद्रोदय आदि—तो बहुत कठिन नहीं होता (यद्यपि आजकल अधिकांश कहानी-लेखक बंधु इतनी प्रामाणिकता जुटाने का भी प्रयत्न नहीं करते हैं) परंतु जहाँ मनोभावों के घात प्रतिघात का प्रश्न उठता है वहाँ प्रामाणिकता की समस्या लेखक के सामने एक बहुत बड़े प्रश्न चिह्न के रूप में खड़ी हो जाती है। यहाँ तक पहुँच कर लेखक के प्रयत्न इन्साइक्लोपीडियाई ज्ञानार्जन तक सीमित नहीं रह पाते। उसे जीवन का पुस्तक पढ़नी पड़ती है। अपने अनुभवों में गहरा पैटना होता है। 'कुहासा और किरण' के लेखक ने इसी क्षेत्र में अपने प्रयत्न जुटाये हैं। उस की सफलता और उस की कहानियों की प्रेषणीयता का रहस्य इसी बात में है।

यहीं पर भाषा का प्रश्न उठ खड़ा होता है। पूछा जा सकता है—क्या इन कहानियों के पात्र सर्वत्र जो भाषा बोलते हैं वह प्रामाणिक कही जा सकती है? सम्भव है इस प्रश्न का उत्तर 'हाँ' कह कर न दिया जा सके। अनेक स्थलों पर भाषा बोल-चाल से अलग हो गयी है; परंतु जहाँ तक 'कही गयी बात' का प्रश्न है मेरे विचार से इन कहानियों में कहीं भी हम असहमत नहीं हो सकेंगे! किसी भी कहानी को लीजिए—पहली कहानी 'जीवन के मोड़ पर' को ही लीजिए। विवाह के प्रश्न पर सन्तोष कुमारी की जो हिचक है, कथानक के विकसित होने पर वह जिस अंतर्द्वंद का रूप धारण करती है और अंततः वह जिस प्रकार 'पराजित शत्रु के आत्म समर्पण करने वाले भाव' में परिणत होती है उस से हम सहमत होते हैं तो इसलिये नहीं कि घटनाओं के इस क्रम का वर्णन टकसाली ढंग से हुआ है या सन्तोष के उद्गार बोलचाल की भाषा में हैं, बल्कि

इसलिए कि घटना का सारा क्रम लेखक की अनुभवों में गहरी पैठ की गवाही देता है। कहलाया उस ने चाहे जिस प्रकार हो परंतु यह असंदिग्ध है कि उस ने सन्तोष के मन की भाषा को ठीक-ठीक सुना है। सुना ही नहीं, गुना भी है। यह कहानी, संग्रह की सब से पहले की कहानियों में से है—सन १९४७ की लिखी हुई। परंतु लगभग सब से बाद की कहानी 'कुहासा और किरण' [१९५१ की लिखी हुई] को भी लें तो भी हमें यह विशेषता भरपूर मिलेगी। इस कहानी में तो लेखक की यह विशेषता चरम सीमा पर पहुँच गयी है। एक प्रसिद्ध कवि के एक प्रसिद्ध गीत की एक-एक पंक्ति के सहारे उस ने कहानी की जा मृष्टि कर दी है वह सचमुच बेजोड़ है। व्यक्तिगत रूप से मैं इस कहानी का शीर्षक 'गीत का जन्म' रखना पसंद करता, परंतु लेखक ने इस का जो शीर्षक रखना पसंद किया है, उस का कारण खोज लेना कठिन नहीं है। जिस भूमि पर वह अपने खोज के प्रयत्न करता है, उस पर यह—केवल यही—शीर्षक उपयुक्त हो सकता था।

इस कसौटी पर कस कर हर कहानी की व्याख्या करने के लिए न तो यह उपयुक्त स्थल है, न ऐसा करना अभीष्ट ही है। असल में यह सत्य तर्कगम्य से अधिक अनुभवगम्य है। इसलिए इसी सम्बन्ध में इस बात पर जोर दे देने भर से काम चल जायगा कि लेखक पाठक की सहानुभूति प्राप्त कर लेने में आश्चर्यजनक रूप से सफल हुआ है। 'विवरण', 'लाइट रोमांस', 'मीमांसा' या 'एक्सर'—किसी कहानी को लें जिस में लेखक ने किसी हद तक शॉक भी दिया है तो भी पाठक की सहानुभूति प्राप्त करने में वह कहीं भी नहीं चूका है। यहाँ तक कि 'संवेदनशील' कहानी में भी—जो कि आदि से अंत तक व्यंग्य है—पाठक की सहानुभूति बनी ही रहती है। यह सब इसलिए है कि लेखक का दृष्टिकोण कहीं भी नकारात्मक नहीं है।

'वह बात' और 'परिस्थितियाँ और चाँद' कहानियों में वातावरण के

आधार पर सहानुभूति को उभारा गया है; परंतु प्रचलित ढंग से सर्वथा हट कर। इन कहानियों में 'चंदा की चाँदनी' प्रेयसी और प्रियतम के अभिसार का सामान नहीं बनती, बल्कि 'चाँदी की तरह बरस कर चट्टानों को ठंडा कर देता है' और 'गंधक की थाली जैसा चाँद' जीवन की कुरूपता देख कर! 'शरमिंदा-सा हो काले व गंदे बादलों में छिप' जाता है। लगता है, जीवन की तिक्तता अनुभव करने के किन्हीं दुर्भाग्यपूर्ण क्षणों में सुंदरता के चिर उदार स्रोत भी लेखक के लिए कृपण हो गये हैं। इन कहानियों में उन्हीं क्षणों का प्रतिबिम्ब है। घटनाक्रम तो ऊपरी वहाना मात्र है।

लेखक के बारे में एक ज्ञातव्य बात कह देना मैं आवश्यक समझता हूँ; और वह यह कि कहानीकार ही नहीं, नाटककार के रूप में भी अब तक वह काफी प्रसिद्ध हो चुका है। यही नहीं, फिल्म-निर्माण के विभिन्न पहलुओं का भी उसे सीधा अनुभव है—अनुभव का खैर हाल में ही हुआ है, मगर दिलचस्पी एक अरसे से रही है। वर्तमान प्रसंग में यह कहना इसलिए जरूरी है कि कहानियों के रचना-विधान में हमें उस की प्रतिभा के इस विचरण के प्रभाव देखने को मिलते हैं। नाटक की भाँति कथा-सूत्र को दृश्यों की योजना कर के आगे बढ़ाने की प्रवृत्ति तो सर्वत्र स्पष्ट है। कतिपय कहानियों में घटनाओं व दृश्यों को कैमरे की आँख से देखा गया है। 'कुहासा और किरण', जिस के नाम पर संग्रह का नामकरण किया गया है, इसी प्रकार के रचना-विधान की कहानी है। फिर भी, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, रचना इस जानकारी के भार से दबी नहीं है। लेखक ने अपनी जानकारी और सूक्ष्म दृष्टि का साधन रूप में ही उपयोग किया है, उसे साध्य बनाने की चेष्टा नहीं की है।

अंत में यही कहना चाहूँगा कि इन कहानियों को पढ़ कर कुछ कहने की अपेक्षा कुछ सोचने को अधिक मन करता है। ये कुछ शब्द जो मैं ने लिखे हैं, वह केवल मौन को भंग करने के लिए। न कि अपने विचारों

को किसी पर लादने के लिए । अंग्रेज़ी में जिसे 'टु थिंक अलाउड' कहते हैं कुछ वैसा ही मैं ने किया है । लेखक के निकट होने के नाते मैं इन कहानियों के प्रति शायद औसत से कुछ अधिक आत्मीयता का अनुभव कर पाया हूँ । इसी दृष्टि से इन चंद लाइनों का कुछ महत्त्व हो सकता है; अन्यथा मैं समझता हूँ कि मैं ने जो कुछ कहा है वह इन कहानियों के पाठकों की सामान्य प्रतिक्रिया मात्र है जिस के बारे में उन्हीं को कुछ बताना कोई खास अर्थ नहीं रखता । कहानीकार या नाटककार के रूप में सत्येन्द्र शर्मा पाठकों के सुपरिचित हैं । उन की कहानियों का संग्रह अब से कई साल पहले निकल जाना चाहिये था । इस संग्रह को अपने हाथों में पा कर पाठकों को 'नई खोज' का नहीं, बल्कि 'इच्छा-पूर्ति' का सुख मिलेगा । कहानियों की सहज मोहकता के कारण पाठकगण सत्येन्द्र शर्मा को तरुण कथाकारों की अगली पंक्ति में गिनते आये हैं । आशा है संग्रहीत ढंग से इन कहानियों को पा कर उन्हें अपनी इस पसंद के कारण निर्धारित करने का अवसर मिलेगा । कहते हैं कि—प्यार पहले हो जाता है, बहाने बाद में ढूँढ लिये जाते हैं । लेखक अपने प्रेमी पाठकों को 'कुहासा और किरण, में बहुत से बहाने ढूँढने का प्रकाशित अवसर दे रहा है ।

नाटक विभाग,
आकाशवाणी—दिल्ली.

ओंकार नाथ श्रीवास्तव

अनुक्रम

जीवन के मोड़ पर		१७
संवेदनशील		३८
वह रात		४६
परिस्थितियाँ और चॉद		६३
निष्कर्ष		७८
विवरण		६७
लाइट रोमांस		१११
मीमांसा		१२२
सूक्ष्म बात		१३६
एक्सरे		१५५
कुइसा और किरण		१६६

जीवन के मोड़ पर

श्रीमती राय ने ट्रे पर पड़ा रूमाल हटाते हुए कहा, “सचमुच में ही बेटा, तुम्हें देख मुझे बहुत प्रसन्नता हुई है। मेरी आधी चिंतायें तो अभी से दूर हो गयी हैं। यद्यपि सन्तोष के विषय में अधिक सोच कर मैंने अपने आप को बहुत परेशान नहीं किया है; लेकिन तब भी बेटा, तुम तो सोच ही सकते हो कि कन्या के ब्याहने योग्य हो जाने पर उस की माँ की चिंतायें कितनी बढ़ जाती हैं—और विशेष रूप से उस दशा में जब कि वह लड़की अपने पिता के साये से वंचित हो चुकी हो.....” उनका गला भर आया। हाथ की तश्तरी मेज़ पर रख उन्होंने अपने नेत्रों से निकलती हुई आँसू की दो बूँदों को रूमाल की सहायता से गालों पर बहने से रोक दिया।

धीरेन चुपचाप बैठा रहा। आँखें उस की भी नम हो गयीं।

उन्होंने फिर कहना आरम्भ किया, “पर धीरेन, मेरी परेशानियाँ

कुहासा और किरण]

बढ़ी नहीं—इस का कारण केवल सन्तोष ही थी । तुम सच मानो बेटा, वह इतनी अच्छी लड़की है कि उसने अपने विषय में चिंतित होने का मुझे कभी कोई अवसर नहीं दिया । मैं आज की अनेक लड़कियों को देखती हूँ—उन की चाल-ढाल, पहनावा, बातचीत, आदतें—तो मुझे बहुत ही आश्चर्य होता है । लेकिन सन्तोष है कि वह ऐसी-वैसी बातों के प्रति कोई रुचि ही नहीं दिखलाती । उस के लिए तो कॉलेज, घर और किताबों के अतिरिक्त जैसे दुनिया में और कुछ है ही नहीं । प्रीवियस में उसने फ़र्स्ट क्लास मार्क्स पाये थे—तुम्हें तो मैंने शायद बताया होगा ?”

धीरेन चौंका । शीघ्र ही सम्हल कर बोला, “जी ।”

“हाँ” श्रीमती राय ने बात जारी रखी, “उस ने तो अभी अगस्त महीने से ही पढ़ाई शुरू कर दी है । लड़कियों में प्रायः जो चंचलता पायी जाती है, वह उस में है ही नहीं । न जाने क्यों वह अभी से इतनी गम्भीर हो गयी है । तुम मेरी बात सच मानो बेटा । वह सब तरह तुम्हारे योग्य है । तुम दोनों की अच्छी निभेगी । किसी आई. ए. एस. या पी. सी. एस. से उस की बन भी नहीं सकती ।” वह मुस्करायी ।

पास खड़े नौकर को सम्बोधित कर उन्होंने कहा, “अरे मनवर, तू ने बीबीजी को चाय के लिए कहा नहीं ? इतनी देर हो गयी । जा फिर कह आ ।”

“अच्छा जी” कह कर मनवर कमरे के बाहर चला गया । ज़रा ही देर में लौट कर वह बोला, “छोटी बीबीजी अपने आप ही आ रही हैं ।”

श्रीमती राय ने एक अर्थभरी दृष्टि धीरेन की ओर डालते हुए कहा, “मैं जबर्दस्ती अपनी राय तुम पर नहीं लाद रही हूँ बेटा । सन्तोष आ रही है । तुम खुद देख लेना ।”

परदा हटा कर सन्तोष ने कमरे में प्रवेश किया ।

धीरेन ने देखी—एक सुंदरी नवयुवती, गोरी, स्वस्थ, और बड़ी-बड़ी आँखों वाली—आँखें, जो बिन काजल ही सुरमीली प्रतीत हो रही थीं.....सन्तोष ने सफ़ेद साड़ी पहन रखी थी, जिस की किनारी लाल थी, और जिस का आँचल अत्यंत शिष्टतापूर्वक कंधों पर पड़ा हुआ था । हाथ में घड़ी थी—इतनी छोटी कि उस का केवल काला फीता ही दिखायी दे रहा था—और जो गोरे हाथ में बहुत भली लग रही थी ।

धीरेन अपने मन से समझौता करने लगा ।

“ये प्रोफ़ेसर धीरेन्द्र कुमार हैं बेटी । युनिवर्सिटी में इसी वर्ष नियुक्त हुए हैं । गुप्त साम्राज्य पर रिसर्च कर रहे हैं.....और धीरेन, ये मेरी बेटी सन्तोष—एम. ए. फ़ाइनल की विद्यार्थी ।” श्रीमती राय ने दोनों का परिचय कराया ।

नमस्ते का उत्तर देते हुए धीरेन को लगा, जैसे सन्तोष से उस का परिचय बहुत पुराना है । आज वह केवल नया किया जा रहा है । अन्यथा सहसा ही इतनी आत्मीयता-सी क्यों उमड़ने लगती.....

“चीनी कितनी लीजियेगा ?” सन्तोष उस से पूछ रही थी ।

अपनी पारिस्थितिक असावधानी पर लज्जित होते हुए धीरेन ने बतलाया, “केवल दो चम्मच ।”

चाय की प्याली धीरेन को देते समय सन्तोष ने देखा—प्याली पकड़ते हुए धीरेन की आँखें नीचे झुक गयी हैं, और गाल जैसे लाल होने लगे हैं । युनिवर्सिटी-लेक्चरर भी इतनी शर्म कर सकता है—यह सन्तोष के लिए एक नया अनुभव था ।

चाय पीते समय बहुत-सी बातें हुईं—अधिकतर पढ़ाई, किताबों, लेखकों और युनिवर्सिटी के सम्बन्ध में ही । धीरेन महसूस कर रहा था,

कुहासा और किरण]

सन्तोष के उत्तर बहुत नपे-तुले और अपने में पूर्ण हैं। वह बिल्कुल ही नहीं शरमा रही है....जब कि सन्तोष महसूस कर रही थी कि धीरेन असाधारण रूप से शरमा रहा है। उस के वाक्य कुछ भिन्नक के साथ कहे गये होने के कारण बड़े बेडौल और विचित्र से प्रतीत हो रहे हैं।

श्रीमती राय सन्तोष को धीरेन से इतनी अच्छी तरह बातें करते देख मन में बहुत प्रसन्न हो रही थीं। कदाचित् उन्हें सन्तोष से इस बात की आशा न थी। बीच-बीच में वह भी अपनी सम्मति दे देती थीं।

काफी समय हो चुका है, यह सोचकर धीरेन उठ खड़ा हुआ। बोला, “अच्छा, अब आज्ञा दीजिये। चलूंगा। आज का समय बहुत अच्छी तरह व्यतीत हुआ है। इस के लिए आप लोगों को धन्यवाद।”

“फिर आओगे न बेटा?” श्रीमती राय ने प्रश्न किया।

“अवश्य” धीरेन ने हाथ जोड़ते हुए उत्तर दिया, और एक चोर दृष्टि सन्तोष की ओर डाली जो श्रीमती राय से छिपी न रही।

सन्तोष अपने में ही मुस्करायी। धीरेन के चले जाने के बाद अपने कमरे में किताबें ठीक करते हुए उसने सोचा, आज प्रोफेसर धीरेन ने उस की धारणा कि पुरुषों को कितनी ही सभ्य श्रेणी में क्यों न बिठला दिया जाय, वे स्त्रियों की ओर असभ्यतापूर्वक देखने की धृष्टता किये बिना बाज़ न आयेंगे, ग़लत सिद्ध कर दी।

वह एक बार फिर मुस्करा उठी।

कुछ दिनों बाद धीरेन की श्रीमती राय से सिनेमा में अचानक भेंट हो गयी। ‘मीरा’ फ़िल्म चल रही थी। इंटरवल होने पर धीरेन बाहर जाने के लिए उठा कि उस ने देखा, सब से पिछली सीटों पर

श्रीमती राय और सन्तोष बैठी हैं। उनकी भी दृष्टि धीरेन पर पड़ गयी थी। बाहर जाना छोड़, धीरेन उन्हीं की ओर मुड़ गया। सन्तोष के पास वाली सीट खाली थी। धीरेन उसी पर बैठ गया।

श्रीमती राय ने प्रसन्न होते हुए कहा, “अच्छा हुआ तुम मिल गये। अकेले बड़ा अजीब-सा लग रहा था। मीरों पर फ़िल्म थी, इसलिए सन्तोष का बड़ा आग्रह था कि इसे देखा जाय। अच्छी फ़िल्म है।”

“जी हाँ। मुझे तो इस का संगीत बहुत मधुर लग रहा है।” धीरेन ने उत्तर दिया।

सन्तोष ने भी दो-तीन शब्दों में इस बात को समर्थित किया।

धीरेन अब तक सन्तोष की ओर देखने का साहस न कर सका था। साहस कर उस ने एक दृष्टि सन्तोष की ओर डाली। सजी हुई सन्तोष को देख वह ठगा-सा रह गया। फ़िल्म शुरू हो जाने पर उसे परदे पर सन्तोष ही का चेहरा दीख पड़ा। उस ने शीघ्र ही अपने को संयत करने की चेष्टा की, जिस में वह बहुत कुछ सफल भी हुआ। किंतु चित्र समाप्त होने तक वह इस विचार को बहुत चेष्टा करने पर भी न हटा सका कि सौंदर्य की सजीव प्रतिमा उस की बग़ल में बैठी हुई है।

चित्र समाप्त होने पर वे लोग बाहर निकले। लौटते समय रास्ते में केवल धीरेन और श्रीमती राय बातें करते रहे। सन्तोष ने इस बात-चीत में भाग न लिया। वह गुपचुप बैठी रही।

सन्तोष का बोल खुला खाने की मेज़ पर। सेम के बीज चम्मच से धीरेन की प्लेट में डालते हुए वह बोली, “ये बीन्स तो लीजिये प्रोफ़ेसर साहब....बतलाइये, कैसे बने हैं।”

और तब श्रीमती राय ने बतलाया कि ये सन्तोष ने तैयार की हैं;

कुहासा और किरण]

और धीरेन ने बहुत उत्साहपूर्वक प्लेट खाली करते हुए कहा कि ये वास्तव में बहुत ही सुन्दर बनी हैं—इतनी सुन्दर बीन्स उस ने पहले कभी नहीं खायीं। और सन्तोष का चेहरा गुलाबी पड़ने लगा।

खाना समाप्त कर ड्राइंग-रूम में आते हुए धीरेन ने श्रीमती राय से कहा, “मुझे नहीं मालूम था। सन्तोष जी तो बहुत अच्छा गा लेती हैं। मेरी प्रार्थना है, इस सुन्दर शाम की समाप्ति उन के गीत से ही हो।”

“तुम्हें कैसे मालूम कि सन्तोष गाती भी है?” श्रीमती राय ने आश्चर्य से पूछा।

धीरेन ने मुस्करा कर उत्तर दिया, “हाथ धोते समय गुनगुना जा रही थीं।”

श्रीमती राय हँसने लगीं। बोलीं, “गुनगुनाने का दंड तो मिलेगा। अब तो सन्तोष को गीत जरूर सुनाना चाहिये।”

सन्तोष एकदम गम्भीर हो गयी। एक हलका-सा “अच्छा” कह, वह कुछ सोच कर बोली, “मीरों का ही एक भजन है—मने चाकर राखो जी।”

और धीरेन सन्तोष के इस बेभिभक्त व्यवहार को देख आश्चर्य में पड़ गया। सन्तोष ने बिना शरमाये हुए मीरों का भजन बहुत सुन्दरतापूर्वक सुना दिया। ध्यानपूर्वक भजन सुनते हुए भी धीरेन सन्तोष के व्यक्तित्व के इस रूप के सम्बन्ध में सोचता रहा। उसे बहुत आश्चर्य हुआ था। वह तो सन्तोष को जीवन के साधारण दायरे से काफी दूर खड़ी समझता था। अब उसे लगा कि सन्तोष में जीवन के प्रति आकर्षण भी है, और उत्साह भी—हालाँकि है अशेष-सा....

ग्यारह बजते देख धीरेन ने विदा ली।

लगभग डेढ़ सप्ताह बाद एक दिन क्लास समाप्त हो जाने पर सन्तोष अपने विभाग के वृद्ध अध्यक्ष डॉक्टर राम से कुछ पूछने गयी। कमरे में डॉक्टर साहब किसी से बातें कर रहे थे। उन की बातें समाप्त हो जाने की प्रतीक्षा में वह बाहर खड़ी हो गयी। न चाहते हुए भी डॉक्टर राम के ये वाक्य उस के कानों में पड़ ही गये। वह कह रहे थे, “मुझे यह शुभ समाचार सुन कर बहुत प्रसन्नता हुई है धीरेन। आखिर तुम्हें अपनी वृद्धा मौसी का कुछ ध्यान तो आया। न जाने कब से इस साध को मन में लिये बैठी है बेचारी। तुम अब अवश्य ही विवाह करो। सन्तोष मेरी विद्यार्थी है। मैं उसे जानता हूँ। बहुत अच्छी लड़की है। तुम्हारे उपयुक्त है। उस से तुम्हें कभी कोई शिकायत न होगी।”

फिर सुनायी पड़ा धीरेन का स्वर, “आप तो जानते हैं डॉक्टर साहब। पहले भी कई जगह से मेरे विवाह के प्रस्ताव आ चुके हैं। लेकिन मेरी तो अब तक यही धारणा थी कि कॉलेज में उच्च शिक्षा प्राप्त लड़कियों के साथ सफलतापूर्वक गृहस्थी नहीं चलायी जा सकती। इसी कारण मैं ने अब तक कहीं हामी नहीं भरी थी। किंतु इधर सन्तोष जी से भेंट हो जाने के बाद मेरी यह धारणा बदल गयी है।”

एक छोटी हँसी के बाद डॉक्टर राम बोले, “वैसे यह धारणा बहुत पहले बदल जानी चाहिये थी। किंतु मुझे प्रसन्नता है कि तुम्हारे इस विचार-परिवर्तन का श्रेय सन्तोष को मिला।” थोड़ा रुक कर उन्होंने प्रश्न किया, “तुम ने सन्तोष की माताजी को अपनी स्वीकृति दे दी है?”

फिर धीरेन का स्वर सुनायी पड़ा, “जी, अभी तो नहीं। लेकिन

कुहासा और किरण]

सोचता हूँ इस बार भेंट होने पर उन्हें इस सम्बन्ध में 'हाँ' कह दूँ, जिस से वह भी सन्तोष जी की सम्मति जान लें। क्यों, आप का क्या विचार है ?”

आगे कुछ भी सुने बिना सन्तोष वहाँ से चली आयी। रास्ते भर वह बुरी तरह अपने में उलझती रही। माँ चुपचाप ये कैसा षडयंत्र कर रही हैं उस के विरुद्ध ? प्रोफ़ेसर धीरेन्द्र से आत्मीयता बढ़ाने का यह कारण था। और वह अब तक यह न समझ सकी ! उस का चेहरा रूँआसा हो गया। अपने कमरे में पहुँच, दरवाज़े बंद कर, अपने को बिस्तर पर डाल उस ने रोना शुरू कर दिया।

काफी रो लेने पर दिल हलका हो जाता है। सन्तोष अब अधलेटी, प्रकृतिस्थ हो इन सब बातों पर विचार करने लगी। उस ने यह समझने की कोशिश की कि लड़की के वयस्क हो जाने पर उसे विवाह के बंधन में बलात् क्यों बाँध दिया जाता है ? क्या स्त्री के लिए यह नितांत आवश्यक है कि वह पुरुष की आश्रिता बन कर ही जीवन व्यतीत करे ?....किंतु बहुत विचारने पर भी वह किसी निष्कर्ष पर न पहुँच पायी।

अब सन्तोष अपने विषय में सोचने लगी। उस की स्वतंत्र प्रकृति और उस की महत्वाकांक्षायें उसे इस बात के लिए विवश कर रही थीं कि वह अपनी माँ की इस इच्छा के विरुद्ध विद्रोह करे। वह विवाह कर अपना अस्तित्व नष्ट नहीं करना चाहती। वह डी. लिट. की डिग्री ले, नारी जाति के जागरण-आंदोलन का नेतृत्व करेगी। वह माँ की इच्छाओं को मूर्त्त रूप दे कर अपनी महत्वाकांक्षाओं को न कुचलेगी। किंतु माँ के विरुद्ध विद्रोह ?....उस माँ के विरुद्ध, जिस की छाया में वह इतनी बड़ी हुई है। जिस ने उसे पिता का अभाव कभी भी नहीं खलने दिया है। उस माँ ने उस की छोटी से छोटी इच्छा तक पूरी

की है। आज उसी माँ की इच्छा को सन्तोष टुकरा देगी !..... सन्तोष ने पाया—अपनी स्नेहशीला जननी की इच्छा वह कभी भी न टुकरा सकेगी। तब ?.....क्या वह अपने को बलि होने दे ?....

कुछ विचार कर उस ने पैड उठा एक पत्र लिखना प्रारम्भ किया।

सन्तोष का पत्र पा कर धीरेन को बहुत आश्चर्य हुआ। बहुत चेष्टा करने पर भी वह यह अनुमान न लगा सका कि ऐसी कौन-सी आवश्यक बात हो गयी है, जिस के सम्बन्ध में वह उस से बात करना चाहती है। अपने आश्चर्य को दबा, वह धड़कते हृदय से सन्तोष की प्रतीक्षा करने लगा।

अपने पीरियड समाप्त होने पर सन्तोष आयी। कुर्सी से उठ, धीरेन ने हाथ जोड़ उस का स्वागत किया। उस का चेहरा अपेक्षाकृत कुछ उतरा हुआ था और वह चिंतित-सी प्रतीत हो रही थी। धीरेन के कुर्सी बढ़ाने पर वह चुपचाप बैठ गयी।

कमरे का अशोभन मौन सन्तोष ने ही भंग किया। अपने मानसिक विप्लव को यथासम्भव छिपाते हुए वह बोली, “क्षमा कीजियेगा। उस दिन आप डॉक्टर राम से बातें कर रहे थे, वह अनायास ही मैं ने सुन लीं। मैं बाहर खड़ी हुई थी और आप लोगों का स्वर बाहर तक पहुँच रहा था।”

धीरेन के चेहरे पर कई रंग आये और हट गये।

सन्तोष ने कहना जारी किया, “आप की इच्छा मुझे आप के द्वारा ही ज्ञात हो गयी, यह कदाचित् अच्छा ही हुआ—मेरे पक्ष में। अन्यथा मुझे आप से यह सब कहने का अवसर न मिलता।”

धीरेन ने संयत स्वर में प्रश्न किया, “आप क्या कहना चाहती हैं !”

कुछ क्षण मौन रह सन्तोष ने कम्पित स्वर में कहा, “केवल यही कि आप मुझ से विवाह करने की इच्छा छोड़ दें.....मेरा विवाह करने का इरादा ही नहीं है।”

धीरेन स्तब्ध रह गया। गहरी सॉस ले मानों अपने में साहस भरता हुआ बोला, “क्या मैं जान सकता हूँ, विवाह के प्रति आप का विचार इतना अनुदार क्यों है?”

सन्तोष भिन्नक का आवरण हटाती हुई बोली, “विवाह मुझे एक लोप होती हुई सी संस्था लगती है। मेरा विचार है, अगले युग में यह कोई नया ही रूप ले लेगी। पिछले युग में यह बहुत सबल थी—कदाचित् इसी कारण कि उस युग की नारी पूर्णतया अपने पति पर ही आश्रित थी। इसीलिए वह न केवल अपनी स्वतंत्रता, वरन अपना अस्तित्व तक खो बैठी थी। किंतु आज की शिक्षिता नारी अपने आर्थिक अधिकारों की माँग कर रही है। अपनी शिक्षा का वह सही उपयोग करना चाहती है.....और मैं समझती हूँ प्रोफ़ेसर साहब, यह अनुचित भी नहीं है। आप ही बताइये, अपनी डिग्रीशुदा सहेलियों की तरह, मैं भी यदि विवाह कर अपने पति की गृहस्थी में सिर्फ़ एक फर्नीचर की तरह बन कर रह जाऊँ तो मेरे एम. ए. तक शिक्षा पाने से मुझे क्या लाभ हुआ? मेरे विचार से मेरी उन सब सहेलियों ने विवाह कर, अन्तःपुर की गुड़ियार्ये बन, अपने इतने वर्षों की साधना नष्ट कर दी है। शिक्षा प्राप्त कर लेने पर भी आज वे आर्थिक दृष्टि से स्वाधीन नहीं हैं। अपने पतियों की ही आश्रिता हैं।” फिर कुछ रुक कर बोली, “आप मुझे ग़लत न समझियेगा प्रोफ़ेसर साहब।”

धीरेन ने कुछ सोचते हुए कहा, “नहीं। आप को ग़लत न समझूँगा। इस सम्बन्ध में आप से अधिक वाद-विवाद भी नहीं करूँगा, क्योंकि उससे हम किसी निष्कर्ष तक नहीं पहुँच पायेंगे। हाँ, सभी

शिक्षित विवाहितायें अन्तःपुर की गुड़ियायें होती हैं और अपने पतियों की आश्रिता होती हैं—आप ऐसा मानती हैं, इस से थोड़ा कष्ट अवश्य होता है। मैं अनेक महिलाओं को जानता हूँ जो शिक्षिता हैं, विवाहिता हैं, जिन का अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व है और जो आर्थिक दृष्टि से पूर्णतया स्वाधीन हैं।”

कुछ क्षण चुप रह सन्तोष बोली, “उन महिलाओं को आप अपवाद समझिये। प्रायः होता तो यही है कि लड़की ने विवाह किया और उसकी आर्थिक स्वतंत्रता छिन गयी।”

धीरेन के चेहरे पर मुस्कराहट आ गयी। कहने लगा, “तो पति नाम के प्राणी से आप को इसलिए चिढ़ है कि वह आप की आर्थिक स्वतंत्रता छीन लेता है। लेकिन आप यह क्यों नहीं सोचतीं कि पति के रूप में आपको जीवन भर के लिए एक मित्र, एक साथी भी तो मिल जाता है—जो किसी भी प्रकार की आवश्यकता पड़ने पर आपकी सहायता कर सकता है....आप को सहारा दे सकता है.....”

“मैं समझती हूँ सहारे की आवश्यकता उनको होती है जो अपने पैरों स्वयं नहीं खड़े हो सकते। मैं तो बिना किसी साथी की सहायता लिये, जीवन की बाधाओं का अकेले ही सामना करते हुए आगे बढ़ना पसंद करती हूँ।” सन्तोष ने कहा।

चाहते हुए भी धीरेन ने कुछ नहीं कहा। चुप रहा।

सन्तोष कुछ रुकती-सी कहने लगी, “तो प्रोफेसर साहब, मैं आशा करूँ न कि आप ने मेरी प्रार्थना.....”

बात काट कर दुःखित स्वर में धीरेन ने कहा, “आप निश्चित रहिये सन्तोष जी। आप की इच्छा के विरुद्ध कुछ न होगा। मैं आज की भेंट का उल्लेख किये बिना ही माताजी को अपनी असमर्थता प्रकट

कुहासा और किरण]

कर दूँगा । और उन्हें समझा भी दूँगा कि अभी कुछ वर्ष वह आप की शिक्षा में किसी प्रकार की बाधा न दें ।”

प्रसन्नता से उमड़ते हृदय को वश में कर सन्तोष बोली, “मुझे आपको इस प्रकार कष्ट देने के लिए बहुत दुःख है प्रोफेसर साहब । किंतु मैं विवश हूँ । आप ने मेरी समस्या इतनी सुगमता से सुलझा दी है, इसके लिए मैं आप की अत्यधिक आभारी हूँ ।” वह तब खड़ी हो गयी ।

“नहीं, इसकी कोई आवश्यकता नहीं” धीरेन ने भी खड़े होते हुए कहा, “मैं अंत में, इस समय भी, आप से यह कहना चाहूँगा—केवल आप से परिचय और स्नेह के कारण—कि आप शायद ये उचित नहीं कर रही हैं । आप का यह निर्णय उचित हो सकता है कि मैं आप का जीवन-साथी होने योग्य नहीं, किंतु आप को जीवन साथी की आवश्यकता ही न हांगी, यह निर्णय अत्यधिक भ्रामक है । जीवन-मार्ग में अनेक बार ऐसे मोड़ आ जाते हैं, अवरोध की ऐसी स्थिति आ जाती है जब एक साथी की आवश्यकता स्पष्टतया महसूस होने लगती है । यह विचार तो कम से कम आप को अवश्य ही कर लेना चाहिये ।”

सन्तोष ने दीवाल पर दृष्टि गड़ाते हुए कहा, “मेरा सारा मोह वर्तमान के प्रति है । भविष्य के अंधकार में भौंकने की चेष्टा मैं नहीं करती । अच्छा तो नमस्ते । आपका बहुत-बहुत धन्यवाद ।”

चूड़ियों की हलकी-सी खनक हुई और सन्तोष तेजी से कमरे के बाहर निकल गयी । धीरेन चुपचाप खड़ा रहा ।

सुबह की चाय के समय मनवर श्रीमती राय को एक लिफाफा

देता हुआ बोला, “प्रोफ़ेसर साहब का नौकर आप के लिए दे गया है।”

उत्सुकतापूर्वक श्रीमती राय ने उसे खोला। उस छोटे-से पत्र को समाप्त करते ही उन का चेहरा फीका पड़ गया। सन्तोष परिस्थिति समझ गयी। डगमगा तो वह भी गयी, किंतु प्रकट में अपने को सबल बनाये रही। पूछा, “क्या है?”

श्रीमती राय ने उचटते स्वर में कहा, “कुछ नहीं।” और पत्र मोड़ कर अपने पास रख लिया। उन के चेहरे से प्रतीत हो रहा था कि उन्हें बहुत व्यथा पहुँची है।

उस समय तो नहीं, किंतु रात को सोने जाते समय भी सन्तोष ने माँ को उसी प्रकार अनमनी और दुःखी देखा तो उसे अपने पर बहुत खीज आयी। क्यों उस ने इस प्रकार माँ के साथ छल किया?....उस के मन में आया कि फौरन दौड़ती हुई माँ के पास जाय और उस की गोद में पड़ उसे सब कुछ बता दे.....रात भर वह यही सोचती रही, किंतु इतना साहस न एकत्र कर पायी कि माँ के कमरे में, माँ के सामने, जा सके।

अपने प्रति उस के रोष की मात्रा उस दिन और भी अधिक बढ़ गयी, जिस दिन युनिवर्सिटी में उसने प्रोफ़ेसर धीरेन्द्र को मुँह उतराये आते देखा। वह लाइब्रेरी से पुस्तकें ले कर लौट रहा था। सन्तोष ने उसे नमस्ते की।

एक फीकी हँसी हँस, नमस्ते का उत्तर देते हुए उसने पूछा, “कहिये सन्तोष जी, आप कुशलपूर्वक तो हैं? माताजी ठीक हैं?”

सन्तोष ने कहा, “जी हाँ, सब ठीक हैं।”

कुछ क्षण चुप रह धीरेन ने फिर प्रश्न किया, “आप की पढ़ाई कैसी चल रही है?”

कुहासा और किरण]

उसी गम्भीरता से सन्तोष ने उत्तर दिया, “अच्छी हो रही है ।” फिर बोली, “आप आये नहीं बहुत दिनों से ।”

धीरेन जैसे चौंक पड़ा । कहने लगा, “आजकल समय नहीं मिलता । कुछ दिनों से पुस्तकों के साथ व्यस्त हूँ । इस कारण कहीं भी नहीं आ जा पाता । अवकाश मिलने पर आऊँगा एक दिन ।”

“अवश्य !”

“अवश्य ! आप माताजी को मेरी नमस्ते कहियेगा ।” लम्बी-लम्बी डग भरता हुआ वह रजिस्ट्रार ऑफिस की ओर बढ़ गया ।

घर आ कर सन्तोष ने माँ से कहा, “आज्ञ प्रोफ़ेसर धीरेन्द्र मिले थे ।”

श्रीमती राय जैसे जड़ हो गयीं । काफी समय बाद बोलीं, “फिर ?”

“कह रहे थे, आजकल बहुत व्यस्त हूँ । समय मिलने पर अवश्य आऊँगा....आप को नमस्ते कह रहे थे ।”

श्रीमती राय की उदासीनता में विशेष अंतर नहीं आया । भारी स्वर में बोलीं, “अच्छा ।” फिर विषयांतर कर बोलीं, “ऊन आ गयी है बाज़ार में । चलो आज ले आयें ।”

सन्तोष समझ गयी कि माँ ने प्रसंग बदलने के लिए ही यह बात कही है । वह कपड़े बदलने अपने कमरे में चली गयी ।

सन्तोष को विश्वास था कि धीरेन अवश्य आयेगा—कम से कम एक बार तो अवश्य ही आयेगा—किंतु वह नहीं आया । शाम के समय स्वेटर बुनती हुई वह प्रति दिन उस की प्रतीक्षा करती थी, लेकिन उसे निराश ही होना पड़ता था । धीरे-धीरे एक महीना बीत गया । उस ने युनिवर्सिटी में भी धीरेन से मिलने की कोशिश की,

लेकिन दो-तीन बार उस का कमरा खाली पा लौट आयी। हाँ, लाइब्रेरी में अवश्य एक दिन धीरेन को देखा था, किंतु जिस तत्परता से वह अध्ययन कर रहा था और नोट्स ले रहा था, उसे देख सन्तोष का मन न हुआ कि उसे डिस्टर्ब करे।

सन्तोष को इस बात का आश्चर्य तो था ही कि धीरेन फिर आने का वायदा कर अभी तक नहीं आया; परन्तु इस से अधिक आश्चर्य उसे इस बात पर था कि माँ उस पत्र के मिलने के बाद से धीरेन के प्रति कितनी उदास हो उठी हैं। कभी धीरेन की चर्चा नहीं करतीं। कभी उसके सम्बन्ध में कोई बात नहीं कहती....और धीरेन के फिर आने की बात तो वह जैसे बिल्कुल ही भूल गयी हैं।

किंतु बात वास्तव में यह न थी। श्रीमती राय एक दिन सन्तोष के युनिवर्सिटी जाने पर धीरेन के यहाँ जा उस की वृद्धा मौसी से मिल आयी थीं। वृद्धा मौसी ने पत्र के विषय में अपनी अनभिज्ञता प्रकट की थी। उन्होंने केवल इतना ही कहा था कि महीने-डेढ़ महीने से धीरेन का अजीब हाल हो गया है। कुछ खोया-खोया-सा रहता है और कहीं इधर-उधर न जा, किताबों से मगज़ मारता रहता है। ज़्यादा बोलता-चालता भी नहीं, बस ज़रूरत भर ही की बातें करता है।

और लौटते समय उन की धीरेन से भेंट हो गयी थी। वह तब युनिवर्सिटी से वापस आ रहा था। साइकल से उतर वह उन के तौंगे के पास खड़ा हो उन से बात करने लगा था।

बीस मिनट बात करने के बाद वह यही निष्कर्ष निकाल पायीं थीं कि फ़िलहाल सन्तोष की विवाह करने की इच्छा नहीं है—कई वर्ष—और यह बात किसी न किसी तरह धीरेन को मालूम हो गयी है। एक पढ़ी-लिखी, समझदार और समवयस्का युवती पर वह किसी प्रकार का दबाव डालना उचित नहीं समझता। न ही यह चाहता है कि उस के

कुहासा और किरण]

अभिभावक उसे विवश करें। दुःखी विवाहित जीवन बिताने की अपेक्षा, वह अधिक अच्छा यही समझता है कि जीवन के दिन इसी अधूरी अवस्था में निकाल लिये जायें।

धीरेन ने उन से क्षमा माँगी थी....

किंतु क्षमा किस बात की ?.... किस अपराध की ?.... धीरेन ने तो कुछ नहीं किया है....किया सन्तोष ने भी कुछ नहीं है.... किसी ने कुछ नहीं किया है। फिर भी जीवन की स्वाभाविक धारा में यह जो गतिरोध हो गया है, यह किस कारण ?....कदाचित् समय के कारण.... नयी हवा के कारण....नये विचारों के कारण....परंतु इस के लिए दोष समय को तो नहीं दिया जा सकता, क्योंकि हमारे प्रति दिन आगे बढ़ने के साथ, जीवन को देखने के हमारे दृष्टिकोण और उस का मूल्यांकन करने के हमारे माप भी तो प्रति दिन बदलते जा रहे हैं....

कदाचित् इन्हीं उदार विचारों के कारण श्रीमती राय चुप रहीं। उन्होंने सब कुछ जानते हुए भी सन्तोष से कुछ न कहा.....और दिन निकलते गये।

स्वेटर पूरा हो जाने पर बड़े चाव से उसे पहनते हुए सन्तोष को सहसा ध्यान आया—जिस दिन ऊन ली थी उसी दिन तो प्रोफ़ेसर धीरेन्द्र ने वायदा किया था कि एक बार अवश्य आऊँगा, लेकिन अभी तक उन का वायदा पूरा नहीं हुआ है। उसे जाने कैसा लगा। स्वेटर उतार कर रख दिया। श्रीमती राय के बहुत कहने पर ही पहना।
....और दिन निकलते गये।

सन्तोष की वार्षिक परीक्षा समाप्त हुई अप्रैल के पहले सप्ताह में। गर्मी काफी पड़ने लगी थी ! दूसरे सप्ताह में शिमला जाने का प्रोग्राम था।

जाने से एक दिन पहले श्रीमती राय पर विशूचिका का भयंकर रूप से आक्रमण हुआ। सन्तोष साहस न खोते हुए भी घबरा गयी। फौरन डॉक्टर को बुलवा भेजा। श्रीमती राय बहुत शिथिल हो गयी थीं। दवाई उन्हें कोई लाभ न पहुँचा सकी। संध्या होते तक उन का शरीरांत हो गया।

घर में रह गये दो नौकर और अकेली सन्तोष—जाँ उस समय धैर्य, बुद्धि, समझ-बूझ सब कुछ छोड़ फूट-फूट कर रो रही थी। परिचित तो बहुत थे, किंतु अपना सगा कोई नहीं। चौकीदार ने अपनी बुद्धि का सदुपयोग कर मनवर को साइकिल ले शीघ्र ही प्रोफेसर धीरेन्द्र के पास भेज दिया।

सुनते ही धीरेन धक्के से रह गया। मौसी से कहा, “चलो मेरें साथ। सन्तोष की माँ जी का देहांत हो गया है।”

वृद्धा मौसी का सॉस ऊपर का ऊपर, नीचे का नीचे रह गया।

सन्तोष के यहाँ पहुँच, मौसी को उस के निकट छोड़, धीरेन ने अपने परिचितों की सूचना दी और बाज़ार का काम किया। दाह-संस्कार उसी रात हुआ।

सुबह धीरेन घर लौट गया और मौसी को कह गया कि जब तक सन्तोष का दुःख हलका न पड़े वह सन्तोष के पास ही रहे। और मौसी के आँचल में सन्तोष की माँ का अभाव भी अत्यधिक रूप में न खला। वह धीरे धीरे प्रकृतिस्थ हाने लगी। माँ की मृत्यु की दुर्घटना पर समय का आवरण-सा घिरने लगा।

तेरहवें दिन की बात है। सन्तोष सिर धो कर छत पर बाल सुखा रही थी कि उस ने धीरेन को गंगा से तर्पण कर, धूप में पैदल लौटते हुए देखा। धीरेन का उदास चेहरा देख उस का मन एक व्यथा से

कुहासा और किरण]

भर उठा । साथ ही धीरेन के प्रति कृतज्ञता से उस का रोम-रोम पुलक उठा । वह अंदर चली गयी ।

दिन भर धीरेन व्यस्त रहा । तीसरे पहर के लगभग ब्राह्मण-भोजन आदि से निवृत्त हो वह बिना कुछ खाये-पीये, वैसे ही लेट रहा । धूप थोड़ी ढलने पर वह घर चलने लगा और मनवर को कह गया, मौसी को बता देना कि धीरेन बाबू घर गये हैं और उन्हें यहीं रहने को कह गये हैं । साथ ही यह भी कहा कि कोई ज़रूरत पड़ने पर या कोई भी काम होने पर उसे शीघ्र खबर कर दी जाय ।

मौसी उस समय पूजा में थी, सो मनवर चुपचाप खड़ा रहा । उन के उठने पर उस ने धीरेन की सारी बातें दुहरा दीं और अंत में यह भी कह दिया कि उन्होंने आज खाया कुछ नहीं है । वैसे ही गये हैं ।

मौसी चुपचाप सुनती रहीं । सन्तोष भी वहीं थी । उस ने भी सुना । सुन कर धीरेन के प्रति उस के मन में एक अज्ञात-सा स्नेह उमड़ पड़ा । अपने जीवन में अवरोध की इस स्थिति में उसे धीरेन से ही तो सहायता मिली । और धीरेन उसे सहायता दे, उस के अवरुद्ध मार्ग को प्रशस्त कर एक निष्काम भक्त की भाँति निर्विकार चित्त से चुपचाप ही उस के मार्ग से हट गया....अपने कार्य-कलापों के सम्बन्ध में कुछ भी संकेत किये बिना....अपने कार्यों का कुछ भी प्रतिदान चाहे बिना.... इस सीधे-सादे धीरेन ने उसे कितनी बुरी तरह पराजित कर दिया । उस ने एक बार धीरेन का अनुरोध अस्वीकार कर दिया था—यह स्मरण रहते भी धीरेन ने इस संक्रांतिमय परिस्थिति में उस की सहायता कर उसे उबार लिया....उसे सदैव के लिए अपना ऋणी बना लिया.... वह चाहने पर भी उस के उपकारों का बदला कभी न चुका पायेगी । इसी धीरेन के प्रति उस की माताजी की क्या इच्छा थी !...

धीरेन के इस प्रकार चले जाने से उस के मन में बड़ी व्यथा

ठमड़ी। परेशान-सी वह कुछ देर सोचती रही। कुछ विचार कर मनवर को बुला उसे तौंगा लाने को कहा और मौसी के पास आ कर बोली, “मौसीजी चलिये, धीरेन बाबू के पास चलें।” मौसी का उत्तर सुने बिना उन का हाथ पकड़ उन्हें अपने साथ ले चलने लगी।

तौंगे से उतर उस ने नौकर से मालूम किया—धीरेन बाबू ऊपर छत पर हैं। मौसी को नीचे ही छोड़ वह बिना किसी झिझक या संकोच के ऊपर चली आयी। अपने सहस पर वह स्वयं चकित हो रही थी।

चाँदनी में खुली छत पर धीरेन चारपाई पर आँखें मूँदे लेटा था। सन्तोष आ कर चारपाई के निकट चुपचाप खड़ी हो गयी। किसी की उपस्थिति का आभास पा सहसा धीरेन ने आँखें खोलीं। सन्तोष को खड़ी देख वह हड़बड़ा कर उठ बैठा। बोला, “अरे आप!....इस समय कैसे आयीं? कोई आवश्यक काम था तो मनवर को भेज कर मुझे बुला लेतीं। इतनी रात को अकेली....”

बात काट कर सन्तोष बोली, “अकेली नहीं आयी हूँ। मौसी भी साथ हैं। नीचे हैं।”

धीरेन चुप रह गया। सन्तोष भी चुप रही।

गम्भीरतापूर्वक बात करने की अपनी रीति का व्यतिक्रम न करते हुए सन्तोष तब कहने लगी, “मैं जानती हूँ, आप अपने मन में अवश्य ही मुझ से खिन्न होंगे। मेरे ही कारण यह सब कुछ हुआ है, इसे मैं सहज ही स्वीकार करती हूँ। माँ के हृदय को भी मेरे व्यवहार के कारण बहुत आघात पहुँचा था, इस का आभास मुझे उन की मृत्यु से पहले बेहोशी की दशा में कहे गये कुछ अस्फुट वाक्यों से हुआ। मैं माँ और आप दोनों के प्रति अपराधिनी हूँ। माँ से तो इस जीवन में अब क्षमा नहीं मिल सकती। किंतु आप से प्रार्थना है कि आप अवश्य

कुहासा और किरण]

ही मुझे क्षमा प्रदान करें, अन्यथा मेरा अंतर सदैव मेरी भत्सना करता रहेगा ।”

धीरेन चुपचाप सोचता रहा । तब एक गहरी साँस ले कर कहने लगा, “आप मुझ से क्षमा माँग मुझे लज्जित कर रही हैं सन्तोष जी । आप ने मुझे किसी प्रकार की हानि या दुःख नहीं पहुँचाया है । मैं आप से खिन्न भी नहीं हूँ । न मेरे मन में आप के प्रति किसी बात का रोष या मान है ।”

“आप इतने उदार हैं, यह मैं जानती थी” सन्तोष ने मन में कहा । प्रकट बोली, “उस दिन युनिवर्सिटी मे मेरी बातों से आप को आश्चर्य अवश्य हुआ होगा—वे कुछ थीं भी ऐसी । किंतु मनुष्य के विचार प्रति पल परिवर्तित होते हैं । आज मैं सोचती हूँ....”

“जाने भी दीजिये उन बातों को सन्तोष जी,” धीरेन ने कुछ दर्द से कहा, “बीती बातें दुहराने से क्या लाभ ? वे सब तो अब अतीत में समा चुकी हैं ।” फिर कुछ रुक कर बोला, “और अतीत को खोद उस के अंदर भाँकने में मैं कोई लाभ भी नहीं देखता । मेरा भी मोह वर्तमान के ही प्रति है ।”

व्यंग्य की कड़ी चोट से सन्तोष तिलमिला उठी । पराजित शत्रु के आत्म-समर्पण करने वाले भाव से वह बोली, “किंतु वर्तमान के आघातों से पराजित होकर मैं तो अतीत की ही स्मृतियों में शरण पाना चाहती हूँ ।.... आप के उस दिन के शब्दों की सचाई मैं आज महसूस करती हूँ । जीवन में अवरोध की ऐसी भी स्थिति आ सकती है, यह कल्पना मैं ने कभी न की थी । आज मैं स्पष्ट रूप से स्वीकार करती हूँ कि जीवन के इस मोड़ पर मैं डगमगा गयी हूँ । सहारे के लिए एक साथी की आवश्यकता होती है, माँ की मृत्यु वाले दिन ही मुझे इस बात का अनुभव हो गया था—इस सत्य को मैं इस समय छिपाऊँगी

नहीं; यद्यपि मैं अब तक यही सोचती थी कि कदाचित् यही एक भेद है, जिसे एक युवा कन्या प्राण पण से छिपाये रखती है और किसी पर प्रकट नहीं करती।”

धीरेन के चेहरे पर कई भाव आये—यह सिर झुकाये बैठी सन्तोष न देख सकी। प्रकट धीरेन गुमसुम रहा। थोड़ी देर बाद बोला, “आप के विचार-परिवर्तन के लिए मैं आप को बधाई देता हूँ। उपयुक्त जीवन-साथी चुनने के लिए मैं यथा-शक्ति आप की सहायता करने को तैयार हूँ, किंतु विवाह में मुझे अवश्य बुलाइयेगा।” वह मुस्कराया।

कदाचित् सहने की हद हो चुकी थी—इस कारण इस अंतिम चोट को सन्तोष न सह सकी। दोनों हाथों से मुँह छिपा वह रो पड़ी। धीरेन इस के लिए बिल्कुल तैयार न था। वह भौंचक रह गया। साहस कर, सन्तोष के सिर पर हाथ फेरता हुआ वह उसे सांत्वना देने लगा और बड़े विनीत स्वर में उस से रोना बंद करने की प्रार्थना करने लगा, किंतु फल कुछ नहीं हुआ। सन्तोष के रुदन का वेग कम न हुआ। वह बैठी सिसकती रही और धीरेन खोया-सा उस का सिर सहलाता रहा।

और कब सन्तोष रोना बंद कर धीरेन के वक्षस्थल पर सिर रख उस के साथ चाँद की ओर देखने लगी—यह धीरेन को न मालूम हो सका.....सन्तोष को भी न मालूम हो सका.....केवल चंद्रमा को यह मालूम हुआ, जो अनभ्र आकाश में अपनी उज्ज्वल हँसी बिखेर रहा था।

संवेदनशील

उत्तरा बड़े ही विचित्र चक्रव्यूह में पड़ गयी ।

उत्तरा !...

नहीं तो । चक्रव्यूह में तो उत्तरा का पति अभिमन्यु फँसा था, उत्तरा नहीं । किंतु वह बात तो महाभारत काल की थी, और यह है अति आधुनिक काल की, जिस में स्त्रियों पुरुषों का स्थान ले, पुरुषों से भी आगे निकलती जा रही हैं । समय की इस प्रगति के कारण ही तो भोली-भाली, सुकोमल उत्तरा को इस टेढ़े समय ऐसे चक्रव्यूह में फँसना पड़ा ।

चक्रव्यूह की रचना प्रातःकाल, उत्तरा के चाय के समय समाचार-पत्र देखने से प्रारम्भ हो गयी थी । उस समाचार-पत्र में वर्णन था, कई आँखों देखी घटनायें थीं, अनेक सच्ची कहानियाँ थीं, और चित्र भी थे—उन हतभाग्यों के, जो पंजाब के इस साम्प्रदायिक दंगे में तबाह

और बरबाद हो चुके थे । बस्तियाँ की बस्तियाँ फूट दी गयीं थीं । घर-परिवार उजाड़ दिये गये थे । छोटे-छोटे, फूल से भी अधिक निर्दोष, सुकुमार बच्चों को संगीनों की नोक पर झुला दिया गया था । युवतियों और विवाहिता स्त्रियों पर अनेक अत्याचार किये गये थे....

और ये सब पढ़ कर उत्तरा के उन सीप से नेत्रों से दो बूँदें टुलक चाय की प्याली में गिर पड़ीं । सचमुच उत्तरा को बहुत दुःख हुआ था । होना भी चाहिये था....क्योंकि वह संवेदनशील थी ।

चाय पीते हुए उत्तरा ने महसूस किया कि उस चाय का स्वाद बदल-सा गया है । उस ने सोचा, इस का कारण उन खारे आँसुओं का चाय में गिर जाना है । अंतस् से निकले आँसू खारे हाँते हैं न !....

वास्तव में इस वर्णन से उत्तरा के संवेदनशील हृदय को बहुत आघात पहुँचा था । हाल ही में तो वह संयुक्त प्रदेश में कई वर्ष रहने के बाद यहाँ लौटी है । वहाँ के लोग ऐसे असभ्य नहीं हैं । वे ऐसे बर्बर कार्य भी नहीं करते । भारतीयों को तो कदाचित् यह व्यसन पड़ गया है । अभी कुछ ही दिन पहले नोआखाली में शायद ऐसा ही कुछ तो हुआ था....उसे ठीक-ठीक ज्ञात नहीं । उन दिनों वह अमेरिका में ही थी ।

वह कुछ भी न खा सकी । चाय भी केवल एक ही प्याली पी पायी ।

समाचार-पत्र हाथ में ले वह ममी के पास पहुँची । ममी प्रसिद्ध नेत्राणी हैं । अपना काम कर रही थीं । उत्तरा का उतरा चेहरा देख, चश्मा आँखों से उतारती हुई बोलीं, “हैलो बेबी, आर यू नॉट फीलिंग वैल ?” [“क्यों बेबी, क्या तुम्हारा चित्त प्रसन्न नहीं है ?”]

उत्तरा ने समाचार-पत्र अपनी ममी के सामने डालते हुए कहा, “इधर देखिये ममी !”

कुहासा और किरण]

ममी ने पत्र पर उड़ती निगाह डालते हुए कहा, “लेकिन दंगा-पुसाद करने वाले इन लोगों के साथ क्या किया जा सकता है ? इन्हें तो किसी भी तरह रोका नहीं जा सकता। ये सब तो होता ही रहेगा !”

“तो इन पीड़ितों के लिए कुछ भी नहीं किया जा सकता ?” उत्तरा ने गहरी निराशा से पूछा।

“पीड़ितों के लिए !....हाँ, उन के लिए तो कुछ हो सकता है।”

“क्या ? उन के लिए क्या हो सकता है !....”

पुत्री की व्यग्रता पर माता मुस्करायी। फिर बोली, “यही—पंजाब से जो ‘शरणार्थी’ भागे आ रहे हैं, उन की सरकार सहायता कर सकती है। तुम ने शायद अभी पढ़ा नहीं—अगले पृष्ठों पर है—भाग कर आने वाले ऐसे प्राणियों की संख्या हरिद्वार, ज्वालापुर, देहरादून, सहारनपुर में बहुत ज्यादा है। अकेले हरिद्वार में ही बत्तीस हजार ‘शरणार्थी’ ठहरे हैं, जिन में बच्चे, जवान, बूढ़े सभी शामिल हैं। उन्हें वहाँ ढेर सारी कठिनाइयाँ हैं। न वहाँ ठहरने का ठीक प्रबंध है, न खाने-पीने का, और न जीवन-यापन की दूसरी आवश्यकताओं का। उन की दशा दया के योग्य है। उन्हें सचमुच मदद की आवश्यकता है। गवर्नमेंट को चाहिये कि उन की मदद करे।”

एक अजीब अंदाज़ से तुनकते हुए उत्तरा ने कहा, “ऊँह ! गवर्नमेंट मदद करेगी या नहीं, ये दूर की, और हम लोगों से अलग चीज़ है। मैं जानना चाहती हूँ, क्या हम लोग इन के लिए कुछ नहीं कर सकते ?”

“ज़रा सोचो तो, हम क्या कर सकते हैं ?” ममी के स्वर में विवशता-सी थी।

उत्तरा ने कुर्सी के हथ्थे पर टिके अपने हाथ के सहारे सिर तिरछा कर लिया और सोचने लगी कि आखिर वह क्या कर सकती है ?

उदास, फीके नेत्रों से सोचते हुए वह बहुत भली लग रही थी।

उत्तरा सोच रही थी—वह क्या कर सकती है ? सिवाय इस के कि अपने ऑटोग्राफ़ दे दे, या बहुत आग्रह करने पर अपना केबिनेट फोटो। वह भाषण भी दे सकती है, लेकिन भीड़-भाड़ के बीच नहीं, केवल ड्राइंग-रूमों में या छोटे-मोटे जलसों में। यही अब तक उस ने अमेरिका में भी किया है। वहाँ उस ने ‘भारतवर्ष’ के विषय में कई लेख भी लिखे हैं और बहुत-सी अमेरिकन कुमारियों तथा महिलाओं को साड़ी बाँधना भी सिखाया है.....किंतु इन दोनों कामों की तो यहाँ ऐसे समय आवश्यकता नहीं है।

थोड़ी देर और सोच कर उत्तरा ने कहा, “ममी, यदि हम नहीं, तो आप और आप के साथी नेता लोग तो बहुत कुछ कर सकते हैं इन परेशान ‘शरणार्थियों’ के लिए।”

“हम नेता लोग भी क्या कर सकते हैं जी, सिवाय इस के कि मिल कर कुछ प्रस्ताव पास कर दें, अखबारों में अपने वक्तव्य दें और जनता से मदद की अपील करें।”

उत्तरा की आँखें छलछलायी-सी प्रतीत होने लगीं। ममी का मातृ-भाव उमड़ा। अत्यन्त स्नेह से पूछा, “अच्छा, इसे इटाओ। पहले यह बताओ, तुम ने चाय पी ली है या नहीं?”

“नहीं, आज मुझ से चाय पी ही नहीं गयी। ममी ज़रा सोचो तो उन लोगों में से बहुतों को तो रोटी का टुकड़ा भी नहीं मिल रहा होगा....”

“डोन्ट बी सिली बेबी [बेबी, मूर्ख न बनो]। मैं जानती हूँ, तुम ज़रूरत से ज्यादा भावुक हो। तिस पर भी इतनी छोटी-छोटी बातों को ले कर परेशान होना....”

उत्तरा के उमड़ते आँसुओं को देख ममी रुक गयीं। पास आ

कुहासा और किरण]

उत्तरा का सिर सहलाने लगीं । फिर इस थोड़ी देर की खामोशी को तोड़ते हुए कहा, “तुम उन के लिए कुछ करना चाहती हो । ठीक है । मैं तुम्हें बतलाती हूँ । परसों मैं मसूरी जा रही हूँ । तुम मेरे साथ चलो । सुबह हम हरिद्वार उतर जायेंगे । दिन भर ‘शरणार्थियों’ के बीच रह कर, शाम को मैं मसूरी चली जाऊँगी और तुम भी मेरे साथ मसूरी ही चली चलना, या वापिस लखनऊ । जैसा तुम चाहोगी । हूँ ।.....”

उत्तरा के आँसू समूहले, ढलके और कुछ कम हुए । चेहरे पर मुस्कान आनी प्रारम्भ हुई । देख कर ममी बोली, “अच्छा जाओ । अब अपनी चाय पी लो ।” फिर ठहर कर बोली, “लाइक ए गुड गर्ल [“एक अच्छी लड़की की तरह”].....”

उत्तरा खिलती हुई उठ कर चली गयी । नौकर को केतली में नया पानी लाने को कहा और समाचार-पत्र देखने लगी । सहसा उसे ध्यान आया, सिनेमा के विज्ञापन देखते हुए—परसों शाम उसे ममी के साथ हरिद्वार जाना है, और परसों ही ‘एम्बेसेडर’ में ‘रैन्डम हारवेस्ट’ सिर्फ एक दिन के लिए लग रही है, जिस के ईवनिंग शो के टिकट, उस के कहने पर इकबाल ने कई दिन पहले ही खरीद लिये थे ।

सचमुच ही बड़ी विचित्र समस्या आ सामने उपस्थित हो गयी । वह ममी के स्वभाव को भी जानती है । वह अपना प्रोग्राम कभी भी कैसेल न करेंगी । वह परसों अवश्य जायेंगी । जाना तो उत्तरा भी चाहती है । उसे पंजाब के पीड़ितों से सहानुभूति जो है; और फिर वह बहुत ज्यादा कोमल और संवेदनशील भी है; किंतु उन लोगों की दशा देखने ममी के साथ जाने पर ‘रैन्डम हारवेस्ट’ जैसी बढ़िया पिक्चर जो मिस होती है....और फिर रोनाल्ड कॉलमैन तो उस का प्रिय अभिनेता है.....

तो अब वह क्या करे ?....

सचमुच ही उत्तरा इस विचित्र चक्रव्यूह में फँस गयी ।

और चक्रव्यूह को भेदने आया इकबाल—उत्तरा का मित्र, एक गोरा, सुंदर, स्वस्थ नवयुवक, जो पी. सी. एस. में बैठ रहा था । उसे उत्तरा ने फोन कर बुलाया था ।

आते ही अपनी फाड़ताई रंग की टाई ठीक करते हुए इकबाल बोला, “डार्लिंग, तो तुम पंजाब सफ़रर्स [पीड़ितों] की कंडीशन [हालत] देखने जा रही हो । इस नेक काम के लिए मेरी बधाई । लेकिन तुम वहाँ ठहरोगी किस होटल में ?”

“होटल ?” उत्तरा ने एक भोले अंदाज़ से कहा, “ओह ! यह तो मैं ने सोचा ही न था ।” फिर ठहर कर बोली, “शायद ममी ने कोई इंतज़ाम.....”

“ममी क्या इंतज़ाम करेंगी” इकबाल ने बात काट कर कहा, “वहाँ तो लोग हर की पौड़ियों या गंगा की रेत पर ही डेरा जमाये रहते हैं । या फिर उन कबूतरखानों में, जिन्हें लोग धर्मशाला के नाम से पुकारते हैं । तुम भी ऐसी ही किसी जगह ठहरो, यह नेक सलाह मैं तुम्हें नहीं दे सकता ।”

उत्तरा चुप रही ।

कुछ बेसुरे से लहज़े में इकबाल ने कहा, “मैं समझ ही नहीं पा रहा हूँ, आखिर तुम्हें उन बदकिस्मतों के बीच अपना कीमती समय गुज़ारने की क्या सूझी है ? क्या चार्म [सौंदर्य] है वहाँ ?”

उत्तरा को ठेस लगी । उस के आँसू जैसे बाहर आने को हुए । रुँधे-से गले से वह बोली, “इकबाल, ज़रा सोचो तो । उन ग़रीबों पर

कुहासा और किरण]

क्या बीत रही है ? उन के घर-बार, ज़मीन-जायदाद सब कुछ लुट चुका है। घर के आदमियों को बेरहमी से मौत के घाट उतार दिया गया है। वे बेचारे, अपना सब कुछ छोड़ अपनी जान बचा यहाँ भाग आये हैं। यहाँ उन्हें कितनी दिक्कतों का सामना करना पड़ रहा होगा। क्या उन की हालत दया के योग्य नहीं है ? क्या वे लोग भी इसी तरह दिन गुज़ार रहे हैं, जैसे हम.....”

घटा बरसने ही वाली देख, इक्वाल कुछ भिन्न-सा गया। नज़दीक आ, उत्तरा का हाथ अपने हाथ में लेता हुआ कहने लगा, “डार्लिंग, तुम समझी नहीं। उन लोगों को मदद की ज़रूरत है— मैं खुद इस बात को महसूस करता हूँ। गवर्नमेंट को चाहिये कि उन्हें हरिद्वार, देहरादून, ज्वालापुर में हर तरह की सुविधायें दे। लोगों को भी चाहिये कि जैसे भी हा सके उन लोगों की मदद करें। मेरा कहने का मतलब तो सिर्फ़ यह था कि तुम्हें इन के बीच न पड़ना चाहिये। तुम्हारे करने के लिए और बहुत से काम हैं। ये काम तो तुम्हें औरों के लिए छोड़ देना चाहिये था। लेकिन अगर तुम उन लोगों की मदद को जाना ही चाहती हो तो मुझे कोई आपत्ति नहीं। बल्कि तुम कहो तो तुम्हें सी ऑफ़ करने [छोड़ने] जंकशन चला चलूँ।”

उत्तरा के चेहरे पर मुस्कान खेलने लगी। इक्वाल के नज़दीक होते हुए उस ने कहा, “तुम कितने अच्छे हो। लेकिन परसों ममी के साथ जाने से ‘रैन्डम हारवेस्ट’ का शो मिस हो जायगा। तुम माइन्ड तो न करोगे ?”

“कतई नहीं डार्लिंग। तुम्हारे लौटने पर अखबार में ‘लैटर्स टु द एडिटर’ [सम्पादक के नाम पत्र] कॉलम में लैटर भेज कर पिक्चर का एक और स्पेशल शो करवा लेंगे। तुम फ़िक्र न करो। समझी...”

“तुम कितने समझदार हो डियर।”

“ये बात तो तुम एक लम्बे अरसे से कह रही हो डार्लिंग । लेकिन मेरी समझदारी का इनाम देने में तुम हमेशा कंजूसी करती रही हो ।”

उत्तरा गुदगुदा गयी । कुछ चिंहुक गयी । इकबाल उस के बहुत करीब हो गया था, इतना कि.....

※

※ ※

※

हरिद्वार पहुँच कर उत्तरा ने अपने को एक अजीब परेशानी की हालत में पाया । दरअसल उन सुसीखतज्जदों को उन के सही रंग में देख वह घबरा गयी । लड़कों व मर्दों के मैले और तेल के रंग जैसे कच्छों व सलवार-पाजामों ने ही पहले-पहल उसे सहमा दिया । उन से बहुत मामूली और उखड़ी-उखड़ी सी बात कर वह औरतों की ओर बढ़ गयी—त्राण पाने के लिए; किंतु त्राण यहाँ भी न मिला । उन दुखियाओं के सिरों और कपड़ों से गंध आ रही थी । अपने घरों से भाग यहाँ आ चुकने पर भी उन बेचारियों को अपने कपड़े और सिर आदि धो लेने की सुविधा कदाचित् अभी तक नहीं मिल पायी थी । बहुतों के पास तो बस्त्रों के नाम पर केवल वही पूँजी थी जो उन के शरीर पर थी । जो कुछ भी हो इस पसीना-सनी गंध ने सुकोमल उत्तरा के सिर में हलका-हलका-सा दर्द पैदा कर दिया । फिर विभिन्न कोणों से विभिन्न अनुपात में आती हुई इस गंध ने उस के सिर-दर्द की मात्रा बढ़ा दी । वह ज्यादा परेशान हो गयी । कुछ घबराहट-सी भी होने लगी ।

जून का सूरज तेज़ी से ऊपर चढ़ रहा था । गर्मी काफी बढ़ गयी थी । उत्तरा को भूख भी महसूस होने लगी थी । सुबह स्टेशन पर ईश्वरदास के यहाँ वह केवल चाय ही तो पी कर आयी थी ।

अपने आस-पास की अस्वच्छता, गंध और अपने सिर में होने वाले हलके दर्द की ओर अधिक ध्यान न दे, आरम्भ में तो वह रूमाल

कुहासा और किरण]

नाक पर लगाये उन सलवार-दुपट्टे वालियों के बीच बैठ उन की विपत्ति और पलायन की कहानियाँ सुनती रही; किंतु बाद में धूप, भूख और सिर-दर्द के बढ़ने के साथ ही साथ उस का चित्त भी उन बेकार-सी गाथाओं से उचटने लगा । उस की तबियत होने लगी कि वह वहाँ से तुरंत उठ जाय, लेकिन औरतें थीं कि जोक की तरह उस से चिमट गयीं थीं और उसे छोड़ने का नाम न ले रही थीं ।

बैठे-बैठे उत्तरा ने महसूस किया कि उसकी सहनशीलता हद पार कर चुकी है; और इन लोगों से अपना पिंड छुड़ाने के लिए उसे कटोर होना पड़ेगा, क्योंकि नम्रतापूर्वक तां जाने के लिए वह कई बार हाथ जोड़ चुकी थी किंतु किसी ने उस और ध्यान नहीं दिया था ।

भल्ला कर सहसा वह खड़ी हो गयी । कहने लगी, “अच्छा, अब मैं चलूँगी । आप लोगों की हालत पर मैं अखबारों में पूरी तरह से रोशनी डालूँगी । हिन्दुस्तान के कोने-कोने के लोगों को आप की इन मुसीबतों की बाबत मालूम हो जायगा ।”

“लेकिन यहाँ पर आये दिन हमें जो मुसीबतें उठानी पड़ रही हैं, उन को तो आप पूरी तरह सुन लीजिये ।” उन में से कुछ पढ़ी-लिखी मालूम हो रही औरतों ने कहा, “यहाँ तो हमें कदम-कदम पर दिक्कतें उठानी पड़ रही हैं । न यहाँ सिर छुपाने की जगह है । न नहाने और खाने-पीने का प्रबंध है । न कोई काम-धंधा-रोज़गार है । और यहाँ के लोग हैं, जो हिकारत की नज़र से हमें देखते हैं और मदद करना तो दूर, बात तक करने पर कुत्तों की तरह बिफरते हैं....”

“आप की इन लम्बी दास्तानों को सुन कर मैं क्या करूँगी ! इन का तो मैं आसानी से अंदाज़ लगा सकती हूँ ।” उत्तरा ने कुछ चिढ़े स्वर में कहा, “मैं तो आप की प्लाइट [दुर्दशा] का बर्डस आई व्यू

लेने [विहंगम दृष्टि से देखने] आयी थी । अब बहुत टाइम हो चुका है । मुझे चलना चाहिये ।”

“बर्ड्स आई व्यू” अंग्रेज़ी जानने वाली कुछ महिलाओं ने गुराँ कर कहा, “मोटर में चढ़, इतना सज-धज कर हमारी मुसीबतों का आई व्यू लेने आयी हो या महज़ अपना शौक पूरा करने आयी हो ? अपना कैमरा नहीं लायीं साथ, हमारी बरबादी की तस्वीरें खींचने के लिए ? शर्म नहीं आती ? आई व्यू लेने आयी हो !”

उत्तरा के जैसे काटो तो खून नहीं । वह सन्न रह गयी । ऐसा कुछ भी हो सकता है, इस की तो उस ने कभी कल्पना भी न की थी ।

और उस की जड़ता उस वक़्त काफ़ूर हुई, जब उस ने कुछ वीर-प्रसवा स्त्रियों को यह कहते सुना, “बलती चुआती तेरे मूँ विच्च देआँगी । निक्कल इत्थो, मरजाणी कित्थो दी । चल परे । नई तौँ भोँटा पड़ के तैन्नू गंगा विच्च सुट्टाँगी ।” [“मुँह भोँसी । मरजाणी कहीं की । यहाँ से निकल । दूर चली जा, नहीं तो भोँटा पकड़ कर गंगा में फेंक दूँगी ।”]

उस की चेतना लौटी । जल्दी-जल्दी कदम बढ़ा, वह अपनी ममी के मित्र की कार तक पहुँची और शोफ़र को तेज़ चलने का हुक्म दे सीट पर ढुलक गयी ।

*

*

शाम के साढ़े छः बजे, गाड़ी के आने, तक का समय स्टेशन पर उत्तरा ने बड़ी कठिनाई और बेचैनी से काटा ।

ठीक कहता था इक्बाल । मुझे इन असम्भ्यों के बीच नहीं पड़ना चाहिये था । ये इन्सान नहीं, वहशी हैं वहशी । शुरू में मुझे वे लड़के किस बुरी तरह घूर रहे थे, जैसे आँखों से निगल जायेंगे । और बाद

कुहासा और किरण]

में वे औरतें—चुड़ैलों का अवतार, ठीक ही हुआ जो उन पर ये सब गुजरा। ये हिन्दुस्तानी हैं ही इसी लायक।

फ़र्स्ट क्लास कम्पार्टमेंट में बैठी हुई उत्तरा सोच रही थी—इस बार भी वह ममी के साथ फ़ॉरेन [विदेश] चली जायगी। ये हिन्दुस्तान उस के रहने के लायक ही नहीं.....

वह रात

सुधीन्द्र को वह रात अच्छी तरह याद है। उसी रात तो उस ने महसूस किया था कि दुःख, निराशा और असफलताओं से भरे होने पर भी जीवन में ऐसे क्षण आ जाते हैं जो सुंदर होते हैं, आकर्षक होते हैं; जिन में मनुष्य अपने को भूल जाता है; और जो बीत जाने पर सुगंधित वासी फूलों की तरह अपनी सुगंध छोड़ जाते हैं.... वह सुगंध जो दुबारा नहीं लौट सकती और जिसे पाने के लिए मनुष्य जीवन भर तड़पता है। उस रात के बाद ही से तो यह संसार सुधीन्द्र के लिए और अधिक भद्दा व बदसूरत, तथा रोगिस्तान की तरह नीरस व उदास हो गया था।

※

※※

※

वह रात पूनम की थी—शरद पूनम की। सूरज के छिपते ही आसमान पर उगे चाँद ने चमकना शुरू कर दिया था। सुधी अपना

कुहासा और किरण]

कम्वल कंधे पर डाले और सूटकेस हाथ में लिये धान की क्यारियों की मेड़ों पर तेज़ी से क़दम बढ़ाये लपकता चला जा रहा था। रह-रह कर वह आकाश की ओर देख लेता था जैसे समय का अंदाज़ कर रहा हो। सहसा वह ठिठक गया। उस के कानों में एक मधुर लय गूँज उठी। कोई लड़की गीत गा रही थी—बहुत ही मीठे स्वरों में—बहुत ही मीठा गीत। एक क्षण वह चुपचाप सोचता रहा, फिर वह दायीं ओर मुड़ पड़ा, जिधर से गीत की लय सुनायी दे रही थी। जैसे-जैसे वह बढ़ता गया वैसे-वैसे गीत की ध्वनि भी उस के नज़दीक आती गयी। सहसा वह रुक गया। उस ने देखा—एक युवती कटे हुए धान की पूलियों को बाँधती हुई पहाड़ी भाषा में गीत गा रही है। गीत क्या था ? सही शब्दों को न तो वह सुन पाया और न समझ पाया; लेकिन उस संगीत ने उसे कल्पना-जगत में पहुँचा दिया। वह सब कुछ भूल गया और आत्म-विभोर हो उस गीत को सुनने लगा। उस गीत में क्या था ?.... केवल लय....केवल स्वर.... और स्वरों की थिरकन मद्धम होती गयी, और वह अपने को बिल्कुल भूलता चला गया—स्वरों की थिरकन के साथ; जैसे संसार में कोई न हो.... जैसे शरीर न हो....जैसे जीवन न हो.... जैसे चेतना न हो.... केवल वहराग हो.... केवल वह लय ही.... केवल वह थिरकन हो....जो मद्धम होती चली गयी, मद्धम होती चली गयी और गीत रुक गया। साथ ही सारा वातावरण एक विचित्र उदासी से भर गया।

सुधीन्द्र को जैसे धक्का-सा लगा। वह फिर जीवित दुनिया में लौट आया। पहाड़ी युवती ने पूलियों का बाँध उठाने के लिए झुकते समय उसे देख लिया था। इसी कारण वह ठिठक कर खड़ी हो गयी थी और अपनी सुंदर आँखों से सुधीन्द्र की ओर देख रही थी।

सहसा सुधी ने आगे बढ़ कर कहा, “तुम ने अपना गाना क्यों बंद कर दिया ! बहुत सुंदर था वह !”

युवती लजा उठी। कुछ न बोली।

सुधी ने अपना प्रश्न दोहराया, “तुम ने अपना गाना क्यों बंद कर दिया ? क्या मुझ को देख कर ? मुझ से लाज आयी क्या ?”

युवती मुस्करायी, फिर बहुत सरल भाव से बोली, “नहीं, गीत ही ख़तम हो गया था।”

सुधीन्द्र उस के कहने के भोलेपन पर मुस्कराया। फिर बोला, “वह गीत ख़तम हो गया तो कोई दूसरा गीत सुना दो। मुझे तुम्हारा गीत बहुत अच्छा लगा है।”

युवती लजा कर अंतरिक्ष की ओर देखने लगी।

सुधीन्द्र फिर बोला, “सुना दो न दूसरा गीत। भई, अगर मुझे इतना अच्छा गाना आता, और कोई मुझे सुनाने को कहता तो मैं उसे अपना गीत जरूर सुनाता, इस तरह....” और उस ने उस गाने की लय की नक़ल की।

युवती खिलखिला कर हँस पड़ी। सुधीन्द्र भी हँसने लगा।

युवती का संकोच अब मिट रहा था। अपनी बड़ी-बड़ी आँखों को नचाते हुए उस ने सुधीन्द्र से पूछा, “तुम कौन हो बाबू ? क्या शहर से आ रहे हो ?”

“मैं एक मुसाफ़िर हूँ” सुधी ने कहा, “हमेशा इधर-उधर घूमता रहता हूँ। शहर से आ नहीं रहा हूँ, बल्कि शहर जा रहा हूँ। आज सुबह मैं रिखौली से चला था। सुबह चार बजे तक मुझे पौखाल डाकख़ाने पर पहुँच जाना है। वहाँ से मैं डाक की मोटर पर शहर चला जाऊँगा।”

आश्चर्य-सा करते हुए युवती ने पूछा, “तुम अब रात में पौखाल जाओगे बाबू ?”

सुधी ने एक छोटी हँसी हँसते हुए कहा, “हाँ, क्यों क्या हुआ ?

कुहासा और किरण]

यह गाँव ढाकपट्टी है न ! पौखाल यहाँ से आठ मील होगा । ज़्यादा से ज़्यादा ढाई या तीन घंटे में वहाँ पहुँच जाऊँगा । अभी तो सूरज डूबे भी ज़्यादा देर नहीं हुई है । फिर पूनो की रात है । ठंडे-ठंडे रास्ता कट जायगा ।”

युवती एक-दो क्षण चुप रही, फिर कुछ सहमते-से स्वर में बोली, “दिन भर चले हो बाबू, थक गये होंगे । न हो तो आज रात हमारे ही गाँव में रह जाओ ।”

सुधीन्द्र इस आग्रह की आत्मीयता में खो गया । युवती के कथन में निहत मोह और अपनेपन के विषय में सोचते हुए एक हलकी-सी मुस्कराहट से उसने पूछा, “तो आज रात इस गाँव का मेहमान ज़रूर बनना पड़ेगा ?”

“हाँ आज यहीं रहना होगा ।” युवती ने कहा ।

चौद अब काफी तेज़ी से चमकना शुरू हो गया था । समय बढ़ता जा रहा था । “अच्छा चलो । आज यहीं सही । लेकिन देखो, कल चलते समय अपना गीत सुनाना पड़ेगा—हाँ !” कह कर सुधी ने सूटकेस हाथ में लिया और चलने के लिए तैयार हो गया ।

युवती ने प्रसन्न चेहरे से पूलियों का बोझ सिर पर रख लिया और दाँती हाथ में ले मेड़ पर सुधीन्द्र के आगे-आगे चलने लगी ।

खेतों के धान कट चुके, किंतु बहुत सी क्यारियाँ ऐसी भी थीं जिन में अभी तक धान खड़े थे । चौदनी में वे पौधे ऊँघते हुए से मालूम पड़ रहे थे ।

क्यारियों की ओर इशारा कर सुधी ने पूछा, “ये क्यारियाँ तुम्हारी हैं ?”

“नहीं, हमारी क्यारियाँ तो ऊपर तक थीं,” युवती ने मुड़ कर संकेत किया, “कुछ क्यारियाँ घर के पास हैं और कुछ नदी की तरफ़ सामने ।”

“नदी की तरफ़ !” सुधी ने किंचित् आश्चर्यपूर्वक कहा, “यहाँ भी नदी है ! आवाज़ तो कहीं सुनायी नहीं देती ।”

“आजकल पानी कम हो गया है । बरसात में खूब रहता है । जाड़ों में और भी कम हो जाता है....चलोगे उस तरफ़ ?”

सुधीन्द्र जैसे यथार्थ जगत से बहुत परे किसी दूसरे ही संसार में विचरण कर रहा था । मंत्रमुग्ध-सा बोला, “चलो ।”

मैंड का रास्ता छोड़ वे दायें हाथ की पगडंडी पर हो लिये । सुधीन्द्र स्फूर्ति-सी अनुभव करता हुआ विचारों में डूबा हुआ चल रहा था । पानी का शोर अब सुनायी देने लगा था । वे नदी के नज़दीक आ गये थे ।

“ये हैं हमारी क्यारियाँ । यहाँ के भी धान कट गये हैं । इन क्यारियों में सब से अच्छे धान होते हैं—नदी से खूब पानी आता है न इन में ।” युवती बोली ।

सुधीन्द्र नदी की ओर देखने लगा । युवती ने अपने सिर का बोझ उतार दिया था और थकी हुई सी नदी की ओर देख रही थी । सुधी भी इसी तरह नदी को निहार रहा था जैसे उस से ताज़गी ले रहा हो ।

नदी का पाट काफी चौड़ा था, लेकिन पानी कम होने के कारण दोनों किनारों का बहुत-सा भाग सूखा पड़ा था । वहाँ सूखे रेत के कण चमक रहे थे और बीच में पानी की पतली धारा चट्टानों से टकराती हुई आगे बढ़ रही थी ।

सुधी ने चारों ओर देखा । समस्त पर्वतीय वातावरण पूर्णिमा की घवल ज्योत्स्ना में स्नान कर रहा था । नदी के ऊपरी ओर भूमते हुए कुलाई के वृक्ष और पार के मुस्कराते हुए भिम्मल और चसनट उसे एक नये ही जीवन का संदेश देते हुए लगे—ऐसे जीवन का जिस में वेदना न हो, जिसमें अभाव न हों, जिस में पीड़ा न हो, जिस में आँसू

कुहासा और किरण]

न हों; बस खुशी ही खुशी हो, जैसी इस समय है। सुधीन्द्र को जीवन इतना सुंदर और आकर्षक कभी न लगा था। कुछ समय के लिए वह सब कुछ भूल गया—ग्रामोद्धार की अपनी योजनायें, रिखौली की अपनी ग्राम-पाठशाला, वहाँ सुधार के अपने द्वारा लगाये व सींचे गये पौधे—वह भूल गया कि दूसरे दिन शाम को शहर में उसे 'प्रौढ़ साक्षरता संघ' की मीटिंग में बोलना है। वहाँ के लिए आगे का प्रोग्राम तैयार करना है। इस समय तो उस के सामने प्रकृति थी, जो आल्हादित हो कर अपना समस्त सौंदर्य बिखेर रही थी। चाँद और पूनम की चाँदनी थी, जिस की रुपहली किरणों में बालू के कण चमक रहे थे। हवा चलने के कारण कुलाई के लम्बे-लम्बे वृक्ष झूम रहे थे और उन के पत्तों की सरसराहट एक विचित्र ही संगीत उत्पन्न कर रही थी।

सहसा चेहरे पर गर्म सॉस पड़ने के कारण वह चौंका। उस ने देखा कि वह युवती के बहुत निकट खड़ा है और युवती उस की ओर निहार रही है। अपने साधारण कपड़ों में वह उस समय चाँदनी में अनुपम सुंदरी प्रतीत हो रही थी।

एक क्षण वह मौन रहा। उस के बाद उसने युवती से स्नेहपूर्ण स्वर में पूछा, “तुम्हारा नाम क्या है?”

“मणी” युवती ने लजाते-से हुए कहा।

न जाने किस शक्ति से प्रेरित हो वह मणी की आँखों में देखता हुआ बोला, “मणी, तुम वास्तव में मणी हो। तुम कितनी सुंदर हो—पूनम की इस रात की तरह, इस दुनिया की तरह। मुझे मालूम न था कि जीवन इतना सुंदर और आकर्षक है! मैं ने तो अब तक उपेक्षा और तिरस्कार का भार लिये दुनिया के अँधेरे में ठोकरें ही खायी हैं। यह तो मैं ने सपने में भी न सोचा था कि मेरे जीवन में कभी ऐसी रात आयेगी जिस में मैं यह महसूस कर पाऊँगा कि दुःख, क्लेश, शोषण,

अन्याय व निराशा के अलावा भी संसार में कुछ है जिसे आशा कहते हैं, प्रेरणा कहते हैं, उत्साह कहते हैं, सौंदर्य कहते हैं ! ओह ! आज की यह रात !....इसे मैं जीवन भर न भूल पाऊँगा ।” वह कुछ सोचता हुआ चुप हो गया । उस की साँस तेज़ी से चलने लगी थी और आँखें प्रसन्नता से चमकने लगी थीं ।

मणी कल्पना के न जाने कौन से लोक में विचरण करने लगी थी । उस के नेत्र प्रातःकालीन तारों के समान दुगनी तेज़ी से चमकने लग गये थे ।

सुधीन्द्र का नशा सहसा टूट गया । एक झटका-सा खा कर उसने पूछा, “इस नदी का नाम क्या है ?”

मणी नदी की ओर देखती हुई बोली, “इस का नाम है दुलहनी ।”

“दुलहनी ! बड़ा विचित्र नाम है ! क्या कोई दुलहन बह गयी थी इस में ?”

“नहीं,” मणी कुछ सोचती हुई बोली, “यहाँ एक दुलहन को जान से मार दिया गया था ।”

सुधीन्द्र चौंक उठा, “मार दिया गया था ! क्यों ? क्या बात हो गयी थी ?”

कुछ क्षण चुप रहने के बाद मणी कहने लगी, “बहुत दिनों की बात है । मैं तब छोटी थी । हमारे गाँव में एक लड़की थी पूनो । बहुत सुंदर थी वह और बहुत अच्छा गाती थी । दिन भर हँसती-हँसाती रहती थी । नदी पार, अगली पट्टी में जो मँझौली गाँव है, वहाँ के लम्बरदार को वह पसंद आ गयी । उस की दो बुआरियों (बीबियाँ) दो-दो, तीन-तीन बच्चे छोड़ कर मर चुकी थीं । उस ने पूनो के बाप से कहा कि पूनो का ब्याह मेरे साथ कर दो और कहा कि मैं दो सौ

कुहासा और किरण]

रुपये चाँदी के नक़्द दूँगा। पूनो के बाप को लगान के या शायद बैलों के रुपये देने थे। वह मान गया और पूनो के बहुत सिर पटकने व रोने-धोने पर भी उस ने पूनो का ब्याह लम्बरदार से कर दिया। पूनो ब्याह बाद ससुराल तो चली गयी, लेकिन उसी रात को उन्हीं कपड़ों में अपने कोठे से भाग निकली। उस के भागने पर हल्ला पड़ गया। सारे गाँव वाले हाथ में लट्ट लिये उस के पीछे आये। इस नदी पर आ कर उन्होंने पूनो को पकड़ लिया—उसी किनारे पर—और इतना मारा कि उस बेचारी का सिर फट गया। सारा वदन लोहूलुहान हो गया। यहाँ तक कि वह मर गयी। तब से इस नदी का नाम दुलहनी पड़ गया है।”

सुधी ने देखा, मणी गम्भीर हो गयी है। बिना कुछ बोले उस ने अपना सूटकेस और कम्बल उठाया। मणी भी सोच में डूबी हुई—सी अपने बोझ की ओर बढ़ी। बोझ सिर पर रख वह उसी भाँति आगे-आगे चलने लगी।

सुधी ने महसूस किया कि क्लेश, वेदनायें, शोक आदि शहरवालों की ही सम्पत्ति नहीं हैं। शहरों से इतने फीट ऊपर उठे होने पर भी ये पहाड़ी गाँव ईश्वर की इन देनों से वंचित नहीं हैं।

कुछ विचार आने पर वह बोला, “आज मेरी वजह से तुम्हें बहुत देर हो गयी है। तुम्हारे घर वाले तो तुम्हारी चाट जोह रहे होंगे।”

मणी ने उदास स्वर में कहा, “घर पर कौन है? बस, मैं और बाबा ही तो हैं। आज शाम को वह भितरली गये थे—अभी तक लौटे न होंगे।”

“अच्छा, घर में तुम दोनों ही हो।” सुधीन्द्र ने कहा। फिर पूछा, “और तुम्हारा ब्याह नहीं हुआ अभी?”

मणी लज्जा से रँग गयी। सिर हिला कर बोली, “नहीं।” फिर मुस्करायी।

गाँव आ गया था। एक कच्चे-से मकान के आँगन में पहुँच मणी खड़ी हो गयी। सिर का बोझ नीचे डालते हुए उस ने कहा, “आओ बाबू, बैठो। मैं अभी रोटी डालती हूँ। इतने तुम आराम करो।”

सुधीन्द्र पास पड़ी चारपाई पर बैठ गया। मणी किवाड़ का कुंडा खोल कर अंदर चली गयी। सुधीन्द्र तब कम्बल सिराहने रख कर लेट गया और चारों ओर दृष्टि फेंक चौंद को देखने लगा।

काफी देर वह इस प्रकार पड़ा रहा। बीच में मणी एक बार आ कर उसे दूध का गिलास दे गयी। वह इस प्रकार न जाने कितनी देर पड़ा रहता कि एक बूढ़े को हाथ में लाठी लिये आते देख वह उठ कर बैठ गया। बूढ़े ने उसके निकट आ कर गौर से उसे देखा, फिर पूछा, “तुम कौन हा भय्या?”

सुधीन्द्र ने कहा, “मैं एक मुसाफिर हूँ बाबा। मेरा नाम सुधी है। आजकल मैं रिखौली में ग्राम-सुधार का काम कर रहा हूँ। वहीं से आ रहा हूँ। पौखाल डाकखाने से डाक की मोटर पर शहर जाऊँगा। सूरज डूबे पर मुझे मणी मिल गयी थी। वह मुझे यहाँ ले आयी। आज रात मैं आप लोगों का मेहमान हूँ।”

बूढ़ा खुश होते हुए बोला, “बड़ी खुशी की बात है बाबू। आप जैसे भले लोगों के साथ दो घड़ी बैठने का सौभाग्य तो बड़ी मुश्किल से मिलता है।”

मणी बाहर निकल आयी थी। बूढ़े को देख कर बोली, “आज

कुहासा और किरण]

बहुत देर कर दी बाबा । रोटी बने हुए देर हो गयी है । चलो रोटी खा लो ।”

“रोटी बन गयी है !” बूढ़े ने कहा, फिर सुधीन्द्र की ओर देखता हुआ बोला, “चलो बाबू, आप को तो भूख लग रही होगी ।”

“नहीं, ऐसी भूख तो नहीं लग रही है,” सुधी ने मुस्करा कर कहा, “अभी डट कर एक गिलास दूध पिया है ।”

बूढ़ा हँसता हुआ बोला, “जवान आदमी हो । एक गिलास में ही डट गये !” फिर सुधी के कंधों पर हाथ फेरता हुआ, बहुत प्रेम से कहने लगा, “आओ, आज हमारे यहाँ की भी रुखी-सूखी ग्रहण कर लो ।”

खाना साधारण था—मंडुए की रोटी और आल (लौकी) का साग । लेकिन सुधी को यही लगा कि इतना मीठा और स्वादिष्ट भोजन उस ने अपने जीवन में कभी नहीं किया है ।

खाना खाते हुए बहुत सी बातें हुईं । सुधीन्द्र ग्रामोद्धार सम्बन्धी अपनी योजनायें बता रहा था—अपने सुनहरे सपने । उस ने बूढ़े से कहा कि उन्हें भी अभी से उस दिन की प्रतीक्षा करनी चाहिये, जब इन पहाड़ी गाँवों में चौड़े और साफ़ रास्ते, उजले सुथरे मकान, पाठशालायें, दवाखाने, डाकखाने और पंचायती बैक होंगे । सब लोग किसान व मज़दूर होंगे, तथा मेहनत कर सुख की दो रोटी खा सकेंगे और मनुष्य बन कर जी सकेंगे ।

उस ने यह भी कहा कि अभी तो वह अकेला ही है और सिर्फ़ रिखौली में ही ग्राम-सुधार का काम कर रहा है, लेकिन उसे पूरा विश्वास है कि वह दिन बहुत ही निकट है जब उस के और भाई भी कॉलेज और युनिवर्सिटी की डिग्रियों का मोह छोड़ कर ग्रामोद्धार के क्षेत्र में उतर आयेंगे और प्रत्येक गाँव में सुधार का यह कार्य प्रारम्भ हो जायगा । देश के नवयुवक अपने सुप्त ग्रामवासी भाइयों की अब और अधिक

उपेक्षा नहीं कर सकते । उन्हें यह जागरण-ज्योति जगानी ही होगी ।

सुधी का मुख एक विचित्र प्रसन्नता से चमकने लगा था । मणी और उस के बावा उन सुनहरे सपनों की रौ में डूबते-उतराते-से सुधी की ओर चकित दृष्टि से देख रहे थे ।

खाना खा लेने के बाद सुधीन्द्र और मणी के बावा उसारे में बातें करने लगे । मणी बर्त्तन उठा कर बाहर कूल पर ले गयी और मॉजने लगी ।

बातें करते-करते सुधी ने पूछा, “क्यों बावा, मणी का रिश्ता नहीं किया अभी ?”

बूढ़ा जैसे दुःखी हो गया । थोड़ी देर चुप रह कर वह बोला, “अभी तक तो नहीं किया था, लेकिन आज कर आया हूँ ।”

सुधी ने आतुरतापूर्वक पूछा, “कहाँ किया है ? किस का लड़का है ?”

बूढ़ा एक बार कॉप उठा । भारी आवाज़ में उस ने कहा, “मणी का भाग्य है । काँई खाते-पीते घर वाला हम जैसों की लड़की लेने को तैयार ही नहीं हुआ । अच्छे घरों के लड़कों को अच्छी ही समुराल चाहिये । चाहे लड़की कैसी ही हो । बहुत दिन इस आशा में रहा कि कहीं तो जोड़ मिलेगा ही । दो-तीन महीने से भितरली का दूकान वाला लाला भी बहुत ज़ोर दे रहा था । अब के होलियों पर उस की दूसरी बुआरी गुज़र गयी थी—तब से घर खाली है । उमर उस की ऐसी ही पैतालीस-छियालिस की होगी । घर में खाने-पीने को बहुत है । मणी सुख से रहेगी, यही सोच मैं राजी हो गया । फिर मुझे उस के कुछ रुपये भी देने हैं, सो आज जा कर बात पक्की कर आया हूँ । मंगसीर तक मणी के हाथ पीले कर दूँगा । क्या कल्ल ? भाग्य है उस का !”

सुधीन्द्र यह सब कुछ इस तरह सुन रहा था जैसे उस के शरीर से प्राण निकल गये हों और वह निर्जीव बैठा हो । बात ख़तम हो जाने

कुहासा और किरण]

पर उस ने बूढ़े की ओर देखा । भविष्य की किसी अनिश्चित आशंका की एक धुँधली-सी छाया उस के चेहरे पर घिर आयी थी, जिस का प्रभाव सुधी के चेहरे पर भी पड़े बिना न रहा । उस का चेहरा भी निस्तेज और पीला-सा हो गया ।

सहसा सुधीन्द्र को ऐसा अनुभव हुआ कि उस के अंतर्प्रदेश में ज्वालामुखी का एक भयानक विस्फोट हुआ है । जो आग अब तक उस के अंदर दबी हुई पड़ी थी, वह अब जैसे कहीं से भी रास्ता निकाल बाहर आना चाहती है । उसे ऐसा लगा कि वह अब यहाँ बैठा नहीं रह सकता, नहीं तो वह पागल हो उठेगा ।

बहुत कठिनाई से अपने आप को समझाल, कम्बल और सूटकेस हाथ में ले वह उठ खड़ा हुआ और बूढ़े से बोला, “अच्छा बाबा, मैं जा रहा हूँ, अभी ही । यहाँ ठहरना मुझे भारी हो रहा है । जिस ऊँच-नीच, अच्छे-बुरे, गरीब-अमीर के कोलाहल से तंग आ कर मैं इन पर्वतीय गाँवों की शरण आया था उसे यहाँ भी मौजूद देख मैं जैसे पागल हुआ जा रहा हूँ । इस कोलाहल से जैसे मेरे कान फटे जा रहे हैं । मुझे क्षमा करना बाबा, मैं तुम्हारी कुछ भी मदद नहीं कर सकता । मेरे पास पैसा नहीं है, नहीं तो मैं तुम्हारा कर्जा चुका देता । लेकिन मैं खुद मजबूर हूँ । यहाँ आ कर तो सोचा था कि यहाँ की दुनिया बदल दूँगा; लेकिन अब सोचता हूँ कि चौड़े रास्ते, उजले-सुथरे मकान, साफ नालियाँ, स्कूल, डाकखाने, दवाखाने—सब मिल कर भी क्या किसी की खोयी हुई हँसी उसे वापिस दिला सकेंगे ?... पीड़ित और निराश प्राणी के बुझे हुए हृदय में एक बार फिर से जीने की लालसा पैदा कर सकेंगे ?....कदाचित्त नहीं....अभी तक संसार से दुःख, विवशता, वेदना, अन्याय व असमर्थता नामक ईश्वरीय विभूतियाँ मिटी नहीं हैं—ये विभूतियाँ, जिन्होंने मनुष्य की जीवित रहने

की लालसा ही मिटा दी है और उसे विवश कर दिया है कि वह एक अभिशाप की तरह अपने दिन पूरे करे। सोचता हूँ, संसार बदलने से पहले ईश्वर को बदलना होगा, लेकिन....लेकिन.....” उस की आवाज़ डूबती गयी और वह खामोश हो गया।

“अच्छा बाबा, नमस्ते।” उस ने हाथ जोड़ कर फिर कहा और लड़खड़ाते कदमों से बाहर निकल गया।

कूल पर मण्डी बर्तन धो रही थी। सुधीन्द्र को इस तरह जाते देख आश्चर्य से बोली, “यह क्या बाबू? इस समय कहाँ जा रहे हो? क्या बात हो गयी?” और उस का रास्ता रोक कर खड़ी हो गयी।

सुधीन्द्र ने उसे गौर से देखते हुए मन ही मन में कहा—बदनसीब लड़की, क्या बात हो गयी है, यह तू इस समय न जान पायेगी। समय ही तुझे यह बात बतायेगा। तुझे नहीं मालूम कि तेरी आशाओं और उमंगों की फुलवारी को लहलहाने देने से पहले ही उजाड़ दिया जा रहा है.....तुझे यह ईश्वरीय देन स्वीकार करनी ही होगी! मैं जानता हूँ, पूनो की तरह इस सामाजिक व्यवस्था से तू विद्रोह न कर पायेगी....क्योंकि दुलहनी की कहानी को ज़िंदा रख तेरी विद्रोह की भावनाओं को पहले से ही कुचल दिया गया है। मैं अच्छी तरह जानता हूँ....तू विद्रोह न कर पायेगी—

“बाबू बताओ न, क्या बाबा से बुरा मान गये हो? ईश्वर के लिए इस समय रात को तो न जाओ।” मण्डी घबरा कर बोली।

ईश्वर—सुधीन्द्र ने मन में कहा और एक व्यग-मुस्कान उस के चेहरे पर फैल गयी। वह बोला, “नहीं मण्डी। अब ज्यादा देर न रुक सकूँगा। अच्छा, तुम्हारा ईश्वर तुम्हारा कल्याण करे!” और वह तेज़ी से आगे बढ़ गया। मण्डी खोयी-सी खड़ी रह गयी। उस के नेत्रों की ज्योति बिल्कुल मंद पड़ गयी थी।

कुहासा और किरण]

सुधीन्द्र नीम-बेहोशी की हालत में चाँदनी में चमकती हुई टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडी पर तेज़ी से बढ़ता गया, यहाँ तक कि पगडंडी समाप्त हो गयी। धक्का-सा खा वह रुक गया। उसने इधर-उधर दृष्टि दौड़ायी और तब उसे ध्यान आया कि वह दुलहनी के किनारे आ गया है—दुलहनी ही तो थी वह ! उसने अपने माथे पर आयी हुई पसीने की बूँदों को पोंछा। टूटा हुआ-सा वह तब पास की एक चट्टान पर बैठ गया और चारों ओर देखने लगा।

वही चाँदनी रात थी....वही दुलहनी का किनारा...वे ही चट्टानें !....फिर रात की खामोशी बढ़ने लगी, लेकिन चाँदनी चाँदी की तरह बरसती रही....तेज़ रोशनी में रेत के कण और अधिक चमकने लगे....चट्टानें और अधिक ठंडी पड़ती गयीं....और वहाँ बैठे-बैठे सुधीन्द्र को सहसा लगा, जैसे जीवन का समस्त सौंदर्य, सारी खुशियाँ, सारी आशाएँ नदी की उस धारा में बहती हुई चली जा रही हैं....और अब वे इस जीवन में कभी न लौटेंगी.....

✱

✱✱

✱

....और बीत जाने पर भी वह रात सुधीन्द्र के जीवन पर छायी हुई है; क्योंकि उस रात के बाद से ही तो यह संसार उस के लिए अत्यंत नीरस, निस्वाद तथा आकर्षणहीन हो गया है। यह और बात है कि आज वह अपने को अथक परिश्रम तथा व्यस्त कार्यक्रम में भुलाये हुए है। किंतु सहसा वह रात क्यों उस के जीवन के लिए अपेक्षाकृत महत्त्वपूर्ण बन गयी ?....यह एक समाधान-रहित समस्या है, जिसे हम छोड़ते हैं। इस की मीमांसा शायद हमारे दायरे से बाहर है।

परिस्थितियाँ और चाँद

जीवन के अगले मोड़ पर आ कर प्रशांत जब अपने अतीत की ओर दृष्टि डालता है तो पाता है कि वह जीवन से समझौता नहीं कर पाया है। संसार उस के लिए तिक्त और नीरस हो चुका है—बिल्कुल आकर्षणहीन ! और ऐसे संसार के बीच वह ज़िन्दगी जी नहीं रहा है, ज़िन्दगी ढो रहा है; जैसे किसी ऐसे कर्तव्य का पालन कर रहा हो जो बलात् उस पर लाद दिया गया है। अपने जीवन के मान-चित्र को फैला कर वह देखता है कि ज़िन्दगी के इस सफ़र में उस ने अपना कोई कदम सही तौर पर नहीं उठाया है। आगे बढ़ने के लिए उसने हमेशा ग़लत रास्ते चुने हैं। और इसी कारण उस की ज़िन्दगी अब तक भटकती ही रही है—बिल्कुल इस तरह जैसे उस का कुतुबनुमा खो गया हो !....

कुहासा और किरण]

....हेम का तार पा कर जड़ प्रशांत विचलित हो उठा था । उस तार ने उस के न जाने कब से सोते हुए शरीर तंतुओं को झंझोड़ दिया था और वह एक उन्माद की सी अवस्था में उस तार को पढ़ता ही जा रहा था जैसे वह तार में लिखे शब्दों के अर्थ को नहीं, वरन शब्दों की आत्मा तक को ग्रहण करने की चेष्टा कर रहा है ।

हेम के पति कैलाश का तार था—‘हेम की दशा ठीक नहीं है । तुम से मिलना चाहती है । शीघ्र आओ ।’

प्रशांत तार पढ़ रहा था, लेकिन तार के उस मटमैले फॉर्म पर उसे हेम नज़र आ रही थी; और उसे ऐसा लग रहा था जैसे हेम धीमे स्वर में याचना-सी करती हुई कह रही है, “शीघ्र आओ प्रशांत !....”

इस हेम का प्रशांत के जीवन में क्या महत्त्व था—यह कदाचित् प्रशांत को उस दिन तक न भास हो सका था जिस दिन हेम सदैव के लिए एक दूसरे व्यक्ति को सौंप दी गयी थी । भोले प्रशांत को यह सत्य तक विदित न था कि संसार में सब कुछ त्याग दिया जा सकता है, परंतु जीवन के यौवन-काल में यदि कोई नागि आ जाती है तो वह न तो मार्ग से हटायी जा सकती है और न त्यागा ही । उसे त्याग कर या उसे मार्ग से हटा कर जीवन जीवन नहीं रह जाता । उस की प्रगति ही रुक जाती है... इसी कारण तो उस प्रशांत का जीवन अशांत और तूफानी हो उठा था ।

प्रशांत अब भी तार के फॉर्म पर दृष्टि गड़ाये हुए था । हेम का चित्र उस की पुतलियों पर थिर था—बीमार और पीली-पीली-सी हेम का, जो सेनेटोरियम के किसी वार्ड में मृत्यु-शय्या पर चुपचाप पड़ी हुई प्रशांत की प्रतीक्षा कर रही थी और सोच रही थी कि कौन पहिले आता है—मृत्यु या प्रशांत ?....

और प्रशांत को लगा कि वह हेम के हृदय की आवाज़, व कॉपते स्वर में उस का आग्रह स्पष्ट रूप से सुन पा रहा है । और तब उस से न हो

सका कि वह और अधिक देर वहाँ, हेम से दूर, रह सके। परेशानी की हालत में उस ने अपने माथे पर बिखरे हुए बालों को ऊपर करने का असफल प्रयत्न किया। तार के फ़ॉर्म को एक बार फिर देख वह लपका हुआ अपने कमरे की ओर बढ़ गया। एक मिनट पहले उसे यह ध्यान आ गया था कि इन दिनों उस का पर्स फूला हुआ है और वह सब से पहले मिलने वाली ट्रेन से अपनी हेम के पास उसे देखने जा सकता है।

*

*

*

सेकेंड क्लास कम्पार्टमेंट में अकेले बैठे हुए प्रशांत का मन उतनी ही तेज़ी से पीछे दौड़ रहा था जितनी तेज़ी से वह मेल ट्रेन आगे बढ़ रही थी। अतीत की स्मृतियाँ पर्वतीय मार्ग के मोड़ों की भाँति होती हैं। दाहिने ओर की दृश्यावलियाँ जब बायीं ओर आ जाती हैं तब फिर नवीन प्रतीत होने लगती हैं। विगत घटनाओं की स्मृति कदाचित् इसी कारण मधुर होती है !

प्रशांत विरस भाव से खिड़की के बाहर देख रहा था। पेड़, पौधे और दूर तक फैले लकड़क खेत तेज़ी से पीछे छूटे जा रहे थे। और यकायक तभी उसे ख्याल आया कि बाहर चाँदनी फैली हुई है। तब उस ने आकाश की ओर देखा था—निरभ्र आकाश में चंद्रमा अपनी समस्त शुभ्रता के साथ दीप्तिमान था। और यह दृश्य देख उस के नेत्रों में कुछ पिछली घटनायें प्रतिबिम्बित होने लगी थीं, चंद्रमा जिनका साक्षी था।

....

...

....

वह रात....

क्लाइव रोड के बँगले की वह रात।

वह हेम के साथ ड्राइंग-रूम में बैठा हुआ बात कर रहा था। उस दिन वह पहली ही बार हेम के बँगले पर आया था, लेकिन एक-दो घंटे

कुहासा और किरण]

के अंदर ही उस ने पाया था कि वह भी हेम के परिवार का एक सदस्य बन गया है। हेम के माता-पिता, छोटे भाई-बहिन, सब उसे अपने आत्मीय प्रतीत हुए थे; और हेम के सम्बन्ध में तो उसे लगा था कि वह और हेम तो युग-युगांतरों से सम्बन्धित हैं। और इसी कारण वह निसंकोच हो कर बातें कर रहा था। समय दस से कुछ ऊपर का था और हेम के माता-पिता सोने के लिए चले गये थे।

तभी उस ने देखा था कि कृष्ण-पद्म की सप्तमी का चाँद अधिकार को भेदता हुआ उदय हो रहा है। उस ने उठ कर खिड़की पर से परदा पूरी तरह से हटा दिया था तथा कमरे की लाइट बुझा दी थी। हेम तब आश्चर्य-चकित हो उसे देखने लगी थी।

बिना कुछ बोले हुए वह चुपचाप आ कर सोफे पर हेम के पास बैठ गया था। तब उस ने उस सुंदर दृश्य की ओर उँगली से संकेत कर दिया था। और तब हेम ने और उस ने देखा था—पोटिको के दोनों खम्भों के बीच चाँदा अपना रजत्-हास बिखेर रहा है। खुली हुई खिड़की और दरवाजे से यथा-सम्भव प्रकाश कमरे के अंदर आ रहा था।

और तभी उन्हें ऐसा लगा था कि वास्तव में चाँद आकाश में नहीं, पोटिको के उन प्रस्तर-स्तम्भों के बीच ही चमक रहा है। या फिर पोटिको के स्तम्भ ही आकाश से सटे हुए हैं और चाँद के व उन लोगों के बीच यह खुली खिड़की, दरवाजे या कमरे की भारी दीवारें आदि कोई व्यवधान नहीं है। वे लोग स्वयं उस सुंदर दृश्य के एक सजीव अंग हैं।

आकाश निरभ्र था, रात्रि निःस्तब्ध, और ज्योत्स्ना अत्यंत प्रोज्ज्वल थी.....

पता नहीं कितनी देर वे दोनों उसी मुग्ध भाव से बैठे रहे थे।

प्रशांत तो प्रकृति के इस सौंदर्य को देख अवाक रह गया था। जीवन में अनेक कठुनाओं और विपमताओं का अनुभव करते रहने के कारण उस की तो यह धारणा हो गयी थी कि जीवन और सृष्टि अत्यंत मलिन है; किंतु जीवन में सौंदर्य भी है—यह अनुभूति उस के लिए बिल्कुल नयी थी। वह बिना पलक भ्रमके हुए एकटक उस दृश्य को देख रहा था, मानो वह उसे इसी तरह बनाये रख सकता है; उस के पलक भ्रमकते, या दृष्टि इधर-उधर करते ही वह दृश्य समाप्त हो जायगा। उस की समस्त वाक्शक्ति जैसे उस दृश्य के सौंदर्य ने हर ली थी, और वह न जाने क्या-क्या सोच रहा था—बिखरे सौंदर्य को देख हम शिथिल क्यों हो जाते हैं? और उसे अपने शरीर के अंदर समा लेने, भर लेने, के लिए क्यों आतुर-आकुल हो उठते हैं?... क्यों?...

और हेम भी तो कुछ सोच रही थी—कदाचित् यही सब, कदाचित् और कुछ।

.....उस रात के बाद से प्रशांत ने जब कभी चंद्रोदय देखा है, उस के मन में बराबर एक हूक-सी उठी है, जो अत्यंत तीव्र होती चली गयी है.....

.....

.....

.....

वह चौदनी रात भी इतनी ही सुंदर थी जिस में अमृत-वर्षा करते हुए रजनीश ने प्रशांत और हेम को हरसिंगार के वृक्ष के नीचे एक दूसरे का सहारा लिये बैठे देखा था। रात्रि प्रगाढ़ हो गयी थी तथा ज्योत्स्ना फैलती जा रही थी। बगीचे के सब वृक्ष निःस्तब्ध खड़े थे लेकिन रजनीगंधा महक रही थी। स्यात् इसी सुगंध की मादकता के कारण हेम रह-रह कर प्रशांत की बांहों में काँप उठती थी। प्रशांत आत्म-विस्मृत अवस्था में बैठा हुआ था। वृक्षों की पत्तियों पर चंद्रमा

कुहासा और किरण]

की किरणें नृत्य कर रहीं थीं। तथा हरसिगार के कोमल फूल इन लोगों पर भर-भर बरस रहे थे.....

प्रशांत ने चेतना पा कर कहा, बहुत मद्धम स्वर में, जैसे अपने अंतर से कह रहा हो, “हेम !”

हेम तब जैसे किसी दूसरे लोक से उतर आयी थी, बोली, “हाँ !”

प्रशांत ने उस की आर देखते हुए कहा, “हेम, तुम मुझे बहुत अच्छी लगती हो !”

हेम ने गणितज्ञों जैसा प्रश्न किया, “कितनी अच्छी ?”

“बढ़ो ५५ त अच्छी.....जितना अच्छा यह चौद मुझे लगता है।”

कुछ क्षणों के लिए नीरवता ।

“तो चौद को सदैव के लिए अपने ही पास रख लो न !” हेम ने नशीले स्वर में कहा । वह जानती थी कि प्रशांत बहुत लजीला है । स्वयं प्रशांत ने एक दिन भाव-धारा में बहते हुए हेम को बतलाया था कि उस के मित्र महेन्द्र ने उस से कहा था, “तुम बहुत भैपू हो प्रशांत । तुम्हारे अंदर बोल्डनैस [साहस] बिल्कुल नहीं है । और लड़कियाँ इस तरह के लड़कों को बिल्कुल पसंद नहीं करतीं । तुम्हें कभी कोई लड़की प्यार नहीं कर सकती । तुम अपूर्ण हो ।” और सुन कर हेम ने मन में कहा था, ‘लेकिन मैं तुम्हें प्यार करती हूँ, क्योंकि मैं पूर्णता से कुछ अधिक हूँ ।’ यही ध्यान इस समय हेम को आ गया था ।

प्रशांत चौंक पड़ा, “बौना चौद को पाने का दुस्साहस करेगा तो जग न हँसेगा उस पर ? मेरे और तुम्हारे बीच बहुत बड़ी दीवार है हेम, उसे लाँघ सकना असम्भव है । मुझ दीन-हीन के ऐसे भाग कहाँ जो मैं तुम्हें पा.....”

हेम ने लुब्ध हो कर उस के मुँह पर अपना हाथ रख दिया था—
गोरा-गोरा, मेहदी-रंजित सुंदर हाथ—“कैसी बातें करते हो प्रशांत ! मैं

तो तुम्हारी हो चुकी हूँ—सदैव के लिए । कैसे कहूँ प्रशांत, मैं तुम्हें प्यार करती हूँ !”

.....और चंद्रमा ने यह भी देखा था । तभी तो चाँदनी गहरी होती चली गयी थी व रजनीगंधा तेज़ी से महकने लगी थी । हरसिंगार के फूल तब भी इन पर झर-झर बरस रहे थे.....

.....

.....

.....

हेम वास्तव में ही पूर्णता से कुछ अधिक थी, और प्रशांत पूर्णता से कुछ कम—था अपूर्ण । तभी तो हेम प्रशांत का अपनाना चाहती थी । वह जानती थी वह प्रशांत की अपूर्णता समाप्त कर देगी । उस का और प्रशांत का मिलन आवश्यक है, अन्यथा प्रशांत जीवन में सदैव ही अपूर्ण रहेगा । इसी कारण जब उस का विवाह निश्चित किया जाने लगा था तो उस ने इस विवाह के विरोध में अपना स्वर ऊपर उठाया था और सीधे प्रशांत के पास पहुँची थी ।

“प्रशांत” हेम ने कहा था, “मेरा विवाह किया जा रहा है । तुम यह जानते हुए भी कुछ नहीं कर रहे हो ?!.....क्या तुम्हें मुझ से प्रेम नहीं है ?”

प्रशांत की छाती पर जैसे किसी ने ज़ोर से घूँसा मारा था । “प्रेम !” और उस का गला रुँध गया था, “तुम्हें कैसे बताऊँ हेम, इस अभाग ने जीवन में कभी किसी से इतना अपनत्व न जोड़ा था । तुम में मेरे प्राण बसते हैं हेम ! लेकिन अपने सुख के लिए मैं तुम्हारा जीवन कैसे नष्ट कर सकता हूँ ? मैं निर्धन हूँ । अपना कहने को मेरा घर तक नहीं है । तुम से विवाह कर क्या मैं तुम्हें सुखी रख सकता हूँ ? विवाह का एक आर्थिक पहलू भी होता है । तुम्हारा विवाह एक सम्पन्न व्यक्ति के साथ होने जा रहा है । तुम उस के साथ शोभा दोगी हेम !”

कुहासा और किरण]

“खाक शोभा दूँगी !” हेम ने आँसू रोकने की असफल चेष्टा करते हुए कहा, “मैं तुम्हारे साथ सुखी रहूँगी ।”

“देखो हेम, हम-तुम भिन्न-भिन्न वर्गों के प्राणी हैं । क्या समाज इस बात को सह सकेगा कि उच्च वर्ग की एक कन्या, एक निम्न वर्ग के युवक का वरण करे ?”

“समाज को बोल में क्यों घसीटते हो ? अपनी दुर्बलता को समाज का आवरण डाल कर छिपाने की चेष्टा न करो । यदि हम में दृढ़ता है तो समाज हमारे मार्ग में कभी बाधक न होगा.....तुम पिताजी से कहो तो । वे अवश्य मान जायेंगे ।” हेम ने आवेश में कहा ।

प्रशांत पत्थर की शिला की भाँति जड़ हो गया । वह हेम को कैसे बतलाये कि वह हेम के पिताजी से इस सम्बन्ध में पहले ही बातें कर चुका है । और उन्होंने अत्यंत शालीनतापूर्वक उसे कनविन्म कर [समझा] दिया है, कि उच्च पदासीन एक अप्सर हेम के लिए अधिक उपयुक्त पात्र है, बनिस्वत एक गरीब युवक के जो जैसे-तैसे अपनी पढ़ाई की गाड़ी को आगे बढ़ा रहा है और जिस का भविष्य बिल्कुल अंधकारपूर्ण व संदिग्ध है ! साथ ही उन्होंने यह भी कह दिया है कि प्रशांत को यह न भूलना चाहिये कि उन के पास मुँह है, और उस पर एक नाक है—दुनिया वाले क्या कहेंगे ?...

इस बात ने प्रशांत को निःस्पंद कर दिया था—अवाक, जड़ । और उस समय से वह एक विचित्र ही अवस्था में था, जैसे वह प्रशांत न रह कर कुछ और ही हो गया हो—नितांत शून्य.....

हेम ने उसे झुकझोरते हुए कहा, “तुम पिताजी से आज ही मिलो प्रशांत । वे अवश्य मान जायेंगे ।”

“वे नहीं मानेंगे । कभी नहीं मानेंगे । और न ही उन्हें मानना ही चाहिये ।” प्रशांत ने कोल्हू की तरह रिरियाते स्वर में कहा, इस तरह

जैसे कोई मीलों दूर बोल रहा हो और उस स्थान पर उस का केवल उतना धीमा स्वर ही सुनायी दे रहा हो ।

.....और हेम खोज कर, हार कर, विवश हा कर, रोती-रांती चली गयी थी । और प्रशांत उसे मना तक न सका था; यद्यपि वह यह चाहता था, परंतु वह बिल्कुल असमर्थ था । उस की समस्त शक्तियाँ कुंठित हो गयीं थीं.....

.....

.....

.....

हेम इस के बाद एक दिन फिर आयी थी —विद्रोहिनी भाव से । उस रात भी चाँदनी फैली हुई थी, किंतु मद्धम और धुँवली, रोगिणी-सी ।

प्रशांत लगभग रोती-सी मुस्कराहट चेहरे पर ला कर बोला था, “हेम, तुम्हारे विवाह की तारीख निश्चित हो गयी है । मैं तुम्हें बधाई देता हूँ । तुम इतनी अच्छी तरह बात समझ जाओगी और परिस्थिति समझाल लांगी, इस का मुझे विश्वास न था । सच हेम !”

हेम कुछ क्षण चुप रह, मानों शब्द तोल-तोल कर बोली थी, “मैं ने विवाह करने से इनकार कर दिया है ।”

प्रशांत थकवारगी कुछ चौंक-सा पड़ा था । खड़े हो कर उस ने पूछा, “क्यों ?”

हेम ने अत्यंत साधारण भाव से उत्तर दिया, “बताना होगा ? मैं तुम से प्रेम करती हूँ ।”

“प्रेम !....ठीक है,” प्रशांत ने कहा, “किंतु माता-पिता की प्रतिष्ठा, उन के वचनों का मोल, उन की इच्छा, उन को आज्ञा....”

“मैं प्रेम को जीवन का सब से बड़ी निधि समझती हूँ । और उस के सामने संसार की प्रत्येक वस्तु को ठुकरा सकती हूँ ।” हेम ने अदम्य साहसपूर्वक कहा ।

कुहासा और किरण]

“प्रेम जीवन की सब से बड़ी निधि है—मैं मानता हूँ,” प्रशांत ने अपने को समझाने की चेष्टा करते हुए कहा, “किंतु माता-पिता की आज्ञा का पालन जीवन का सब से बड़ा कर्त्तव्य है। जीवन के इस महान कर्त्तव्य की पूर्ति कर ही जीवन की इस महान निधि की रक्षा की जा सकती है हेम। तुम्हें विवाह के लिए अपनी स्वीकृति दे देनी चाहिये।”

“सब थोथे तर्क हैं। मैं नहीं मानती।”

“मानने होंगे हेम। तुम्हें मेरी सौगंध।” प्रशांत ने कहा।

हेम तिलमिला उठी। “सौगंध देने का अधिकार है तुम्हें?”

“है हेम, है।” प्रशांत ने हेम के हाथों को अपने हाथों में दबाते हुए कहा था।

और उस फीकी व उदास चाँदनी में वे दोनों तब फूट-फूट कर रोये थे। चाँद ने तब अपने को मैले बादलों के गिलाफ में छिपा लिया था, और दूर कहीं पर टिटिहरी कर्कश स्वर में बोलने लगी थी।

*

*

*

ट्रेन के रुकते ही प्रशांत कम्पार्टमेंट से उतर पड़ा। वह अपना एक भी मिनट नष्ट नहीं करना चाहता था। जल्दी-जल्दी वह बाहर आया। टैक्सी ड्राइवर को उस ने पाँच रुपये का नोट थमाया और शीघ्र से शीघ्र सेनेटोरियम पहुँचा देने को कहा।

युक्लिपटिस के ऊँचे वृक्षों के उस लम्बे एवेन्यू को तेज़ कदमों से पार करते हुए प्रशांत का दिल बुरी तरह धड़कने लगा था। तथा ठंडी हवा के चलते रहने पर भी उस के चेहरे पर पसीना चमकने लग गया था।

कॉरीडोर में ही उसे कैलाश मिला। कैलाश ने उसे गौर से देखते हुए कुछ विश्वासपूर्वक कहा, “आप प्रशांत हैं न !”

प्रशांत जैसे होश में आया। कुछ क्षणों की खामोशी के बाद उसे

ख्याल आया कि उस का कुछ बोलना आवश्यक है । चेस्टर की जेब से दोनों हाथ निकाल उन्हें जोड़ता-सा हुआ वह बोला, “जी..... नमस्ते ।”

फिर उसे ध्यान आया कि हेम के सम्बन्ध में भी तो पूछना चाहिये । बड़ी कठिनाई के बाद उस के ओंठ फिर हिल सके, “हेम अब कैसी है ? ठीक है न !”

“बहुत ठीक” कैलाश ने व्यंग्य से कहा, “खुद देख लीजिये । हॉल के बगल वाले छंटे कमरे में है ।”

प्रशांत को कैलाश के पराङ्ग खड़ा होना कष्टप्रद प्रतीत होने लगा । वह अपने आप को घोर अपराधी स्वीकार कर रहा था । विवाह के पश्चात् के इन दो वर्षों में कैलाश और हेम ने उसे कितनी बार बुलाया था, किंतु उस ने तो एक तिरस्कारपूर्ण चुप्पी ग्रहण कर ली थी—पत्रों का उत्तर तक न दिया था । उसी उपेक्षिता हेम की आज उसे सुखी आयी थी !—जब कि वह अपनी जीवन-यात्रा लगभग समाप्त ही कर चुकी थी !..... प्रशांत का मन उसे कचोटने लगा । नीची दृष्टि किये वह आगे बढ़ने लगा ।

हेम के कमरे में उस ने प्रवेश किया । चारपाई पर रग्गा हेम निश्चेष्ट भाव से पड़ी हुई थी । प्रशांत को देख उस की आँखों में एक पथरायी-सी चमक उठी और उस के चेहरे पर एक दयनीय व ग्लान मुस्कान आ गयी ।

हेम के उस घुलते हुए शरीर को देख प्रशांत बहुत कठिनाई से अपनी रुलाई रोक सका । हेम के रुखे-उलझे बालों पर प्यार से हाथ फेरता हुआ वह बोला, “यह क्या हालत कर ली है हेम तुम ने अपनी ! इतने दिनों से यहाँ हो, मुझे खबर तक न दी । इतना पराया हो गया था मैं ?”

कुहासा और किरण]

“यह अपने दिल से पूछो । पहले जब ख़बर दी थी, तब भी तो तुम आये थे..... क्यों ?”

प्रशांत का चेहरा धुँधला पड़ता जा रहा है ।

“कहाँ थे तुम अब तक ?”

“कहीं नहीं हेम, मेरा मस्तिष्क ठिकाने न था ।”

“इन दो वर्षों में तुम ने क्या किया है ?” हेम ने पूछा ।

“रुपया कमाया है” प्रशांत ने ग्लानिपूर्वक कहा ।

“कितना कमाया है ?” हेम ने प्रश्न किया—वही गणितज्ञों वाला ।

“बहुत !”

तो ठीक है” हेम ने जैसे संतोषपूर्वक कहा, “तब तो तुम मुझे बाहर ले जा सकते हो । विदेश जा कर मैं ज़रूर अच्छी हो जाऊँगी।”

प्रशांत ने प्रसन्न होते हुए कहा, “हाँ हेम, हम-तुम स्विट्ज़रलैंड चलेंगे । तुम बहुत जल्द अच्छी हो जाओगी ।”

प्रशांत के भोलेपन पर हेम मुस्करायी । बोली, “भोले राजा, अब स्विट्ज़रलैंड जाऊँगी मैं ? अब तो मुझे उस लोक में जाना है, जल्दी ही....”

“ऐसा न कहो हेम” प्रशांत ने घबरा कर कहा, “तुम जल्दी ही अच्छी हो जाओगी ।”

“मैं अब अच्छी न होऊँगी प्रशांत” हेम ने मुस्कराने की चेष्टा करते हुए कहा, “दानों लंग्स बिल्कुल ल़लनी हो गये हैं....अब तो कुछ ही दिन और हैं । अच्छा हुआ तुम आ गये । लेकिन देखो, जब तक मेरे प्राण न निकल जायँ, मुझे छोड़ कर मत जाना ।”

“हेम....” प्रशांत आँसुओं के वेग को रोकने में असमर्थ हो दोनों हाथों से अपना मुँह ढक तेज़-तेज़ कमरे के बाहर निकल गया ।

*

*

*

प्लेटफॉर्म पर खड़ा हुआ प्रशांत गाड़ी का इंतज़ार कर रहा था। वह हेम या कैलाश किसी से भी बिना-कुछ कहे-सुने चुपचाप चला आया था। वह अपने को संसार का घोरतम अपराधी समझ रहा था। हेम के विवाह बाद उसका हेम के प्रति व्यवहार कितना अधिक निष्ठुर था !.... और यद्यपि हेम ने उस के इस व्यवहार की कोई शिकायत न की थी, तथापि हेम को इस दशा में पहुँचाने में उस के इस व्यवहार का कितना बड़ा हाथ था—यह प्रशांत महसूस कर रहा था और यह चीज़ उसे बहुत चुभ रही थी। वह अपने अंदर इतनी शक्ति नहीं पा रहा था कि हेम या कैलाश किसी का सामना कर सके। उस की आत्मा उसे कोस रही थी, और इसी कारण वह उन लोगों की चोरी से भाग आया था।

चाँद निकल आया था, और चमकने भी लगा था; किंतु भूमि और आकाश के बीच कुदरे का कुछ ऐसी चादर फैल गयी थी कि चाँदनी भूमि पर ठीक तरह से नहीं आ पा रही थी और ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे चाँदनी को भूमि पर आने में कुछ कष्ट हो रहा है। हाँ, तारे अवश्य तेज़ी से जगमगा रहे थे।

✱

✱

✱

लेकिन तीसरे ही दिन प्रशांत को फिर तार मिला था और उसे पढ़ उस का दिल डूबने लगा था। तार में लिखा था—‘सौँस उखड़ी-सी चल रही है। तुम्हारा नाम ले रही है। शीघ्र आओ।’

प्रशांत के मन में आया कि तार को फाड़ कर फेंक दे और गले में पड़ी टाई की नॉट को इतने जोर से कसे कि उस के प्राण निकल जायँ, ताकि वह इस मानसिक यंत्रणा से मुक्ति पा जाय। किंतु उस ने अपने आप को बहुत साहस से सम्हाला, और लड़खड़ाते कदमों से स्टेशन जाने के लिए चल पड़ा।

✱

✱

✱

कुहासा और किरण]

कॉरीडोर में कैलाश इस बार उसे न मिला । द्रुवते हृदय से उस ने हेम के कमरे में प्रवेश किया । डॉक्टर, नर्स और कैलाश—ये तीन व्यक्ति हेम की चारपाई के पास खड़े हुए थे । चारपाई पर हेम पड़ी हुई थी, लेकिन पहले की तरह उस का मुँह खुला हुआ न था । एक सफ़ेद चादर उस के ऊपर सिर से पैर तक पड़ी हुई थी ।

उस के क़दमों की आइट पा कर कमरे के तीनों व्यक्तियों ने उस की ओर देखा । प्रशांत उन भेदती दृष्टियों का सामना न कर सका । उस ने अपनी दृष्टि नीचे झुका ली ।

कमरे को मृत्यु जैसी शीतल नीरवता को तोड़ते हुए कैलाश ने प्रशांत की ओर देखते हुए कहा, “टू लेट । आग़ुरी समय भी तुम्हारा हाँ नाम ओठों पर था !”

प्रशांत को लगा कि कमरे की सब चीज़ें धुएँ की तरह ऊपर उठने लगी हैं और वह नीचे पाताल की ओर धँसता जा रहा है । उस की आँखों के सामने एक धुँध-सी छाने लगी । न जाने किस शक्ति के आधीन हो उस ने थरते स्वर में कहा, “मैं उसे देखूँगा ।” और काँपते पैरों से हेम की चारपाई की ओर बढ़ने लगा ।

प्रशांत ने हेम के चेहरे पर से चादर हटा दी—हेम आँखें मूँदे सो रही थी, जैसे कोई सुंदर सपना देख रही हो । उस के चेहरे पर अब भी एक फीकी-सी मुस्कुराहट थी । उस के गुलाबी ओठ मुरझा गये थे और आँसुओं की दो हल्की धारायें गालों पर बह कर सूख गयी थीं....

न जाने कितनी देर वह अचेतन भाव से उसी प्रकार खड़ा रहा । और जब नर्स ने आगे बढ़ उस के हाथ से चादर ले हेम को ढक

[परिस्थितियाँ और चाँद]

दिया, तब वह लड़खड़ाता हुआ खिड़की के पास जा कर खड़ा हो गया। बाहर कोहरा-सा फैला हुआ था। अजाने ही उस की दृष्टि आकाश की ओर चली गयी जो मटमैले बादलों से ढका हुआ था। उस ने तब अपने प्रणय के साक्षी चंद्रमा की ओर देखा और पाया कि वह पीला पड़ गया है—इतना पीला कि वह चाँद न लग गंधक की थाली जैसा प्रतीत हो रहा है; और जो उसे अपनी ओर देखता पा कर शरमिंदा-सा हो काले व गंदे बादलों में छिप गया है !.....

निष्कर्ष

मैं, अभय और विक्रम, हम तीनों ही उस फ्लैट में रहते थे। किस तरह रहते थे, यह ब्योरा देना आवश्यक होगा। या आप स्वयं ही अनुमान कर लीजिये कि भले गृहस्थों तथा सभ्य परिवारों वाले एक भरे-पूरे मुहल्ले में तीन अविवाहित, खुश-शकल, और रोमांटिक स्वभाव के नवयुवक अपनी शराफत पर बिल्कुल भी आँच न आने देते हुए सब की दृष्टि में जिस प्रकार सज्जन बने रह सकते हैं, उसी प्रकार हम भी रहते थे। हम तीनों 'पात्रिका' में सब-एडिटर थे। प्रायः रात की झूटी दिया करते थे और घर केवल सोने या नहाने-धोने ही आया करते थे। यही कारण था कि हमारा वह सब समय जिस में हम किसी को शंका या शिकायत का अवसर दे सकते थे, सोने या बाहर घूमने में ही निकल जाता था। मुहल्ले वालों को हमारे आचरण से पूर्ण संतोष था। हम भी जान-बूझ कर किसी प्रकार का कोई संदिग्ध कार्य न

करते—न बाल काढ़ते (या टाई की नॉट कसते) हुए सहसा बाहर बरामदे में निकल आते, न जाड़ों में तेल-मालिश का बहाना कर बदन उघाड़े देर तक छत पर बैठे रहते; न कभी कैमरा ले कर छत पर नाले-काले बादलों और उड़ते पक्षियों के चित्र लेने की कोशिश करते । फिल्मी गाने तो ऑफिस में ही गा लिया करते थे । यानी कुल मिला कर इतने रक्षा-कवच हम ने अपने इर्द-गिर्द एकत्र कर रखे थे कि उन्हें भेद कर किसी प्रकार की भी आँच हम तक आनी सम्भव न थी । यह बात नहीं कि हमें अपना मन मारने में कोई कष्ट नहीं होता था, लेकिन मजबूरी थी । बहुत दीड़-धूप के बाद पाया हुआ यह मकान लोगों की शिकायतों के कारण कहीं हाथों से न निकल जाय, इस डर ने हमें बलात् शरीफ बना रखा था । जो भी लाफरायटी हमें करनी होती, मुहल्ले के बाहर करते । वैसे मुहल्ले वालों का हमारे इस दूध-धोयेपन पर आश्चर्य भी न था; क्योंकि बैठे-बिठाये उन लोगों का यह ख्याल हो गया था कि हम तीनों में से अभय और विक्रम के विवाह हो चुके हैं; लेकिन अभय की पत्नी गोलोकवासी हो चुकी है और विक्रम का अभी गौना नहीं हुआ है । मेरी केवल सगाई ही हुई है, विवाह नहीं हुआ है । [हम ने ही एक दिन हँसी में अपनी धोवन से यह बात कही थी—शायद उसी ने मुहल्ले भर में प्रसारित कर दी थी ।]

हम तीनों एम. ए. थे । मैं और विक्रम हिंदी में, अभय फिलॉस्फी में । विक्रम और मैं तो लिखा-लिखाया भी करते थे, तथा अपने परिचितों में लेखक के नाम से ही प्रसिद्ध थे । लेखक होने के नाते ही हम मनोविज्ञान में भी थोड़ा-बहुत दखल रखते थे । हमारा ध्यान अपनी आंग आकर्षित कर लेने वाले किसी भी व्यक्ति को देखते ही हम उस का मनोवैज्ञानिक अध्ययन एवं विश्लेषण प्रारम्भ कर देते । फिर हम लोगों में बहस छिड़ जाती । प्रायः अभय ही (फिलॉस्फी में

कुहासा और किरण]

डिग्रीशुदा होने के कारण) मेरे व विक्रम के अनुमानों का खंडन करता । हमारी धारणाओं को गलत बताता, तथा अनेक मनावेत्ताओं के पुस्तकीय उद्धरणों द्वारा अपने कथन को पुष्टि करता । कभी हम उस के तर्क मान जाते । कभी उन का नकारात्मक ढंग से विरोध करते । कहना न होगा, वहस अधिकतर स्त्री पात्रों या स्त्री चरित्रों को ले कर ही होती । ऐसी दशा में उद्धरण भी फ्रायड और एडलर के ही दिये जाते ।

जो बात मैं सुनाने जा रहा हूँ उस की नीबत ही न आ पाती, यदि हमारे सामने वाला मकान सहसा खाली हो कर, कुछ दिनों बाद सहसा ही न भर जाता । कई वर्ष से उस मकान में एक पेंशनयाप्ता सज्जन अपनी पत्नी के साथ सीधे-सादे ढंग से रह रहे थे । इन लोगों से हमें कोई दिलचस्पी न थी । इसी कारण इन लोगों के बिना कुछ कहे-सुने मकान छोड़ देने पर हमें कोई विशेष आश्चर्य न हुआ । एकाव दिन तो हमने इस बाबत बात की, उस के बाद चीज़ हमारे ध्यान से उतर गयी । मकान का बंद दरवाज़ा अब हमारे लिए एक ऐसी वस्तु हो गया जिसे हम देख कर भी नहीं देखते । खाली दिमाग से उस आँर देखा और बातों में व्यस्त आगे बढ़ गये ।

हफ़्ता भर भी न हो पाया था कि एक रोज़ दिन में खाना खाने जाते समय हम ने मकान का दरवाज़ा खुला देखा । अंदर सफ़ाई हो रही थी, क्योंकि झाड़ू लगाने और फ़र्श धोये जाने की आवाज़ बाहर साफ़ सुनायी दे रही थी । अभय ने मुस्कराती दृष्टि से मेरी ओर देखते हुए कहा, “लो भाई, जल्दी ही मकान की किस्मत जाग गयी..... चलो, बहुत खुशी की बात है । कुँवारों का पड़ोस सदा आवाद रहना चाहिये ।”

मैंने मुस्करा कर कंधे विचकाये । बोला, “अपन को क्या ? चाहे

पड़ोस आवाद रहे या बरवाद ! हौं, तुम्हारी खुशी की बात पक्की है.....”

“वह क्यों ?” अभय ने व्यग्रता की मुद्रा में प्रश्न किया ।

“तुम्हें अपने ‘मनोवैज्ञानिक अध्ययन’ के लिए पात्र जो मिलेंगे ।”

“और तुम्हें भी तो तुम्हारी कहानियों के लिए पात्र मिलेंगे—सजीव, प्रेरणा देने वाले ।”

मैं हँसा, “हाँ जी, कुछ प्रेरणा मुझे पहले किरायेदारों से मिली थी, कुछ इन से मिलेगी ।”

“भाई, वे लाग तो आँवर-एज [अघेड़] थे” अभय ने शरारती लहजे में कहा, “क्या पता ये लोग अंडर-एज [युवा] हों—मेरा मतलब है इस परिवार में एकाध व्यक्ति अवश्य ही अंडर-एज हो । मतलब समझ रहे हो न मेरा ?”

मुझे और विक्रम को हँसी आ गयी । हँसते हुए विक्रम ने कहा, “मतलब खूब समझ रहे हैं तुम्हारा । अब चलो, खाना खा लो । लौट कर चाहे यहीं खड़े रहना ।”

खाना खा कर हम और दिनों की तरह कहीं घूमने या किसी मित्र से मिलने-जुलने नहीं गये, बल्कि सीधे घर लौट आये । उस समय तक मकान में कोई नहीं आया था । सफ़ाई समाप्त हो चुकी थी, और मकान में दुबारा ताला लटक गया था । उत्कंठापूर्ण दृष्टि से ताले को देखते हुए हम अपने फ्लैट में घुसे । थोड़ी देर बातचीत करते रहे, फिर पड़ कर सो गये ।

दो-ढाई घंटे की नींद के पश्चात् सब से पहले मेरी आँख खुली । क्योंकि अंकुर मन में पड़ चुका था, इस कारण अचानक हाँ मैं बाहर बरामदे में निकल आया । मकान के सामने एक पिक-अप खड़ा था, और दो-तीन कुली उस पर से सामान उतार रहे थे । बराबर में एक

कुहासा और किरण]

युवा स्त्री सामान उतारने के सम्बन्ध में उन्हें आदेश दे रही थी। उस के निकट चार-पाँच वर्ष का छोटा-सा गोल-गुँथना बालक उँगली मुँह में डाले विस्मय के भाव से कुलियों को सामान उतारते हुए देख रहा था। बायें हाथ से उस ने अपनी माँ की साड़ी का छोर पकड़ रखा था। मैं बरामदे की रेलिंग पर और अधिक झुक गया जिस से स्त्री के चेहरे को स्पष्ट देख सकूँ। स्त्री गेंहुए-से रंग की थी, और किसी वनावटी प्रयास के बिना ही काफी आकर्षक लग रही थी। उस ने बायल की छुपी साड़ी पहन रखी थी, हाथों में शायद सोने की चार-एक चूड़ियाँ थीं, और पैरों में सफ़ेद जूतियाँ। अभी तक मुझे उस का प्रांफ़ील दीख रहा था, किंतु सहसा वह कुलियों की सहायतार्थ आगे धूम गयी। अब मैं उसे साफ़ देख सकता था। उस के शरीर और चेहरे को गठन निर्दोष था। केवल एक मिनट देखने से ही मुझे यह प्रतीति हो गयी कि इस रमणी के दिन चाहे कैसे भी निकले हों किंतु खाली बैठ कर या सो कर नहीं निकले। चेहरे से स्पष्ट था कि इस प्राणी ने जीवन-संघर्ष देखा है, स्यात् उस का प्रखरता से अनुभव भी किया है; और यही कारण है कि समय व संघर्ष की ओर से इस चेहरे को एक ऐसी विषादमयी आभा की भेंट मिली है जिस ने इस रमणी को अनुपम लावण्य एवं आकर्षण प्रदान किया है। नेत्र काले व गहरे थे, तथा नेत्रों की गहराई कदाचित् विषाद की कालिमा के कारण और अधिक प्रगाढ़ हो गयी थी। विषाद की एक मलिन-सी छाया उस के चारों ओर देदीप्यमान थी।

मैं लपक कर अंदर गया। नवाबों को झुकभोरता हुआ बोला, “उठिये हज़रात। नये किरायेदार आ गये।”

मेरे पहले वाक्य को दोनों भागवानों ने सुन कर भी नहीं सुना; किंतु दूसरे वाक्य ने जैसे उन्हें बिजली से छू दिया। तड़प कर उठ बैठे।

अभय ने छूटते ही प्रश्न दागा, “कौन कौन हैं परिवार में ? क्या लम्बा-चौड़ा परिवार है ?”

“नहीं” मैं ने कहा, “मैं ने तो केवल एक स्त्री और एक छोटे बच्चे को ही देखा है ।”

अभय ने वेतावी से पूछा, “स्त्री युवती है या अधेड़ ?”

“युवती” मैं ने उत्तर दिया ।

“नमकीन है ?” विक्रम ने जिज्ञासा प्रकट की, “कुछ रोमांस वगैरा भी भिड़ सकता है या नहीं ?”

विक्रम का प्रश्न स्वाभाविक था । उस के स्थान पर यदि मैं होता तो कदाचित् मैं भी यही पूछता । किंतु क्योंकि मैं उस रमणी को देख चुका था और उस से प्रभावित हो कर लौटा था, मुझे यह प्रश्न खटक गया—ऐसे जैसे यह प्रश्न मेरी किसी आत्मीया के लिए किया गया हो । एक क्षीण भल्लाइट से मैं ने कहा, “यार, कुछ तो शर्म करो । वह शरीफ़ घराने की औरत है । विवाहिता है, और बाल-बच्चेदार है....”

विक्रम बेशर्मा की तरह हँसा । फिर बोला, “ओ हो ! अभी से तरफ़दारी शुरू हो गयी ! क्या बात, इतनी देर में ही मन में मोह पैदा हो गया !” तब अभय की ओर मुड़ कर कहने लगा, “भाई, यह शरीफ़ज़ादा तो अब कुछ बताने से रहा । चलो, हम ही देख आयें ।”

दोनों बड़े उत्साह से उठे और बरामदे में चले गये ।

कुछ देर यों ही खड़ा रह मैं भी निरुद्देश्य बरामदे में चला आया । दोनों जिज्ञासु रेलिंग पर मुझे निरीक्षण में व्यस्त थे । उस निरीक्षण के फल-स्वरूप मन्तव्य प्रकट किये जा रहे थे । अभय का मनोवैज्ञानिक अध्ययन प्रारम्भ हो गया था । वह कह रहा था, “मैं शर्त्त लगाता हूँ, औरत पोज़ करने वाली है । शकल से ही लगता है कि हिपोक्रिट [ढोंगी] है.....” विक्रम दैहिक अध्ययन में संलग्न था, “बायीं तरफ़

कुहासा और किरण]

एक नन्हा-मुन्ना-सा तिल होता तो मज़ा आ जाता । लेकिन सेक्स-अपील है काफ़ी मात्रा में मौजूद—यह मानना पड़ेगा.....” आदि-आदि । उन के रिमाकों को सुन मुझे अपनी हँसी रोकनी कठिन हो गयी । तभी अभय ने मुड़ कर मेरी ओर देखा और कहा, “अच्छी है— बल्कि जरूरत से ज्यादा अच्छी है । क्यों, है न !”

मुझे हँसी आ गयी । एक पॉपुलर हिंदुस्तानी फिल्म का संवाद मुझे याद आ गया । मैं ने कहा, “लेकिन अभय, वह माँ है, माँ.....”

“माँ भी तो किसी न किसी की प्रेयसी ही होती है.....” अभय ने अपना ज्ञान बधारा ।

यह बात इतने बेहूदा तौर पर सत्य थी कि मैं उस समय इस का कोई उत्तर न दे सका ।

सहसा रमणी ने फुसफुसाहट सुन हमारी ओर देखा और पाया कि छुः आँखें उसे टकटकी लगा कर देख रही हैं । किंतु हमारे आश्चर्य की सीमा न रही, जब हम ने देखा कि रमणी अपनी दृष्टि हटा कर दूसरी ओर फेर लेने के बजाय उसी साहस और निर्भीकता से हमारी ओर देख रही है, जिस से हम उसे तक रहे थे । अंतर केवल हमारी और उस की दृष्टियों के भावों में था । हमारी दृष्टियाँ भूखी थीं जिन में उस के शरीर को निगल जाने का भाव था; जब कि उस की दृष्टि संतुष्ट व्यक्ति की दृष्टि थी जिस से यह स्पष्टतः परिलक्षित होता था कि हमें इस भाव से देखा जा रहा है जैसे हम हाइ-मॉस के युवा-पुरुष नहीं, सड़क पर गड़े मील के पत्थर या रँगे-पुते बिजली के खम्भे हैं । दृष्टियाँ आपस में टकराने पर भी महिला ने अपनी नज़र नहीं हटायी, लगातार हमारी ओर देखती रही । कुछ लज्जित से हो कर हम लोगों ने ही अपनी नज़रें नीची कर लीं, और बरामदे से कमरे में आ गये ।

“बहुत बोल्ड [ढीठ] है ! तीन मिनट तक लगातार आँखें

मिलाये ही खड़ी रही ! पलक तक नहीं झुकायी ।” विक्रम ने प्रशंसात्मक स्वर में कहा ।

“मैं ने पहले ही कहा था” अभय ने आवेश में अपना स्वर ऊँचा करते हुए कहा, “बहुत पोज़ करने वाली है ।” फिर कुछ रुक कर बोला, “मुझे तो शिकारी प्रकृति की मालूम पड़ती है ।”

यहाँ यह बात स्पष्ट रूप से लिख देनी आवश्यक होगी कि हम तीनों नवयुवक मध्य वर्ग और ठेठ मध्यवर्गीय परिस्थितियों की ही उपज थे । और ऐसी दशा में, जैसा कि स्वाभाविक था, हम बचपन से ही स्त्री वर्ग के सहवास से वंचित थे । स्त्रियों का सहवास थोड़ा-बहुत जो भी हमें प्राप्त हुआ था, वह केवल अपनी ममेरी-चचेरी बहिनों द्वारा । और आगे चल कर युनिवर्सिटी में अपनी सहपाठिनियों द्वारा । दोनों दिशाओं में एक सुनिश्चित सीमा थी, जिस से आगे बढ़ना सम्भव नहीं था । इसी कारण स्त्री वर्ग के सहवास के लिए हम लोगों के मन में जो भूख जगी थी उस का निवारण नहीं हो पाया था । और यही कारण था कि आजकल के अधिकांश नवयुवकों की भौति हम भा स्त्री-वर्ग के सम्बन्ध में हलकी व घटिया तरह की बातें करने का लोभ नहीं संवरण कर पाते थे; तथा व्यक्ति-विशेष के सामने आने पर या उस की चर्चा होने पर हम लगभग अश्लील एवं उच्छृंखल-सी मजाक कर अपने दिलों की भड़ास मिटा लिया करते थे । हमारी अवस्था उस व्यक्ति जैसी थी जिस की पाचन-शक्ति तो बिल्कुल ठीक हो, किंतु जिसे निरंतर पथ्य दिया जाय; और जो अपनी विवशता को छिपाने के लिए झूठमूठ ही डींग हों के कि अब तो उसे स्वस्थ मनुष्यों के भोजन से बिल्कुल अबचि हो गयी है.....

कुहासा और किरण]

तीसरे या चौथे दिन हमारी धोबन आयी। धोबन मुहल्ले का चलता फिरता रेडियो थी। उसे देख विक्रम ने पड़ोस की बातें छेड़ दीं। और तब धोबन द्वारा हमें मालूम हुआ कि हमारे नये पड़ोसी के परिवार में तीन प्राणी हैं—पति, पत्नी और छोटा बच्चा अशोक। पति को टी. बी. हो गयी है। है तो नौजवान ही, लेकिन हालत खराब है। शायद ही बचे। वैसे इलाज हो रहा है। घर में नौकर नहीं है। बीबीजी बेचारी दिन-रात काम में लगी रहती हैं—खाना बनाती हैं, बर्तन साफ़ करती हैं, फिर बाबूजी की टहल-पानी; बाज़ार से सामान तक खुद लाती हैं। पलक भूषकने तक की फुरसत नहीं लगती बेचारी को। वैसे हैं तो बड़े आदमी, लेकिन आजकल बीमारी की वजह से तंग हैं—लेकिन इतने भी नहीं कि दूसरों के आगे हाथ फैलाना पड़े। काम चल ही रहा है.....

दूसरी सुबह ग्यारह बजे के लगभग मैं ब्लेड्स ले कर पास वाले जर्नल-मर्चेन्ट की दूकान से निकल रहा था कि मैं ने सामने से पड़ोसिन रमणी को आते देखा। मैं वहीं ठिठका खड़ा रह गया। रमणी के हाथ में दवाई की शीशियाँ और कुछ फल थे। शायद वह डॉक्टर के पास से लौट रही थी। मुझे अपनी ओर उसी असभ्यतापूर्वक घूरता पा कर स्यात् वह मुझे पहिचान गयी। वह भी मेरी ओर उसी प्रकार देखने लगी। लज्जित भाव से मैं ने दृष्टि चुरा ली और दूसरी ओर देखने लगा। किंतु तिस पर भी उस ने मेरी ओर देखना बंद न किया और बराबर मुझे देखती रही जब तक वह मुझ से आगे न बढ़ गयी। वैसे तो उस का यह सारा ही व्यापार आश्चर्य में डालने वाला था; परंतु सब से विचित्र बात यह थी कि उस दिन की भौंति आज भी उस की दृष्टि में उन्नी भर भी पटकार, घृणा अथवा भर्त्सना का आभास न था।

वह मुझे बिल्कुल इस तरह देख रही थी जैसे मैं दूकान की शो-विंडो में सजा चीनी-मिट्टी का कोई बबुआ हूँ ।

मैं सिर झुकाये सोचता घर आया । शाम धोवन की बातें सुन निश्चय किया था कि ये लोग परदेस में हैं और विपत्ति में पड़े हुए हैं । मनुष्य होने और साथ ही पड़ोसी के नाते इन के पास अवश्य जाऊँगा और इन का विश्वास प्राप्त करने की चेष्टा करूँगा, ताकि जो भी सहायता इन की मुझ से सम्भव हो सके मैं करूँ । किंतु हाल की इस घटना ने मेरा उत्साह ठंडा कर दिया और मैं यह सोच खामोश हो गया कि कहीं मेरे उन के यहाँ जाने का वे कोई ग़लत मतलब न लगायें.....

इसी तरह दिन बिना किसी शोर ग़ल के निकलते गये । अभय और विक्रम का भी इस दौरान में पड़ोसिन महिला से अनेक बार साक्षात्कार हुआ, तथा प्रत्येक बार उसी व्यवहार की आवृत्ति हुई । वह हमें अत्यंत साधारण दृष्टि से अपलक देखती रहती, जब तक हम लोग या वह स्वयं आगे न सरक गयी । घर पहुँच हम दुगनी तेज़ी से बहस करते । अनेक धारणायें महिला के सम्बन्ध में बनायी जातीं, किंतु एक दूसरे द्वारा स्वीकृत न होतीं । बहस खूब तूल पकड़ती, लेकिन तिस पर भी हम किसी निश्चित निष्कर्ष तक नहीं पहुँचते । यों ही इधर-उधर अँधेरे में टामक-टोयें मारते रहते । झल्ला कर विक्रम मुझसे कहता, “मानता हूँ तुम्हारी बात कि वह सच्चरित्र है, लेकिन कमबख्त इस तरह घूर कर क्यों देखती है ? क्या ये लक्षण भी शरीफों के हैं ?....”

कुछ दिन बाद की बात है । मैं और विक्रम बैठे कुछ पढ़ रहे थे कि अभय लपकता-सा आया और हमारे निकट बैठता हुआ बोला, “पार्टनर, आज तो मर मिटे ।”

बात जिस टोन में कही गयी थी उस से स्पष्ट था कि यह मरना

कुहासा और किरण]

दुनिया से सदा के लिए कूच कर जाना नहीं है, वरन ज़िंदा रहते हुए ही किसी पर मर मिटना है। सो बहुत हलके तौर पर पूछा, “क्यों, क्या बात हो गयी ?”

अभय ने प्रसन्नता-मिश्रित उत्साह के स्वर में कहा, “आज मुझे ग्रे फ़ार्मैसी में अपनी पड़ोसिन मिल गयी। मैं एनासिन लेने गया था। वहीं वह बैठी हुई थी। जब तक मैं एनासिन ले कर फ़ार्मैसी के बाहर न निकल गया, वह मुझे एकटक देखती रही।”

“तो क्या हुआ ? वह हम सभी को इसी तरह देखती रहती है।” विक्रम ने लापरवाही से कहा और नई सिगरेट सुलगायी।

“जनाब, यहीं तो खास बात है” अभय ने हाथ से हवा चीरते हुए कहा और उत्साह के आवेश में खड़ा हो गया। हम हैरत से उस की ओर देखने लगे कि वह कौन सी आश्चर्यजनक, अघट्य वार्त्ता सुनाने जा रहा है।

“अब तक वह हमें देखती अवश्य थी, पर उस की दृष्टि बिल्कुल कोरी होती थी, लेकिन आज उस ने मुझे इस भावपूर्ण दृष्टि से देखा कि बस ! मैं कह नहीं सकता। क्योंकि मैं उस के बिल्कुल निकट खड़ा था, इस कारण मैं ने उस की आँखों की अतल गहराई में छिपे आशय को स्पष्ट पढ़ लिया। उस में एक आह्वान था, एक मौन-निमंत्रण.....” अभय ने एक लम्बी साँस छोड़ी, “काश ! वे आँखें शादी-शुदा आँखें न हो कर कुँआरी आँखें होतीं तो मैं.....”

“खुदकुशी कर लेता” मैं ने बात पूरी की।

“खुदकुशी कर लेता !” अभय ने चिढ़ कर कहा, “अरे कम्बस्त उसे भगा ले जाता।”

“जियो बेटे” मैं ने मुस्कराते हुए कहा, “पृथ्वीराज चौहान के वंश के अंतिम दीपक तुम्हीं तो हो !”

“हाँ-हाँ” विक्रम ने कहा, “यह तो तुम अब भी कर सकते हो । पर तुम्हें कुछ समय ठहरना होगा । उसका पति बचेगा तो है नहीं । उस की मृत्यु के बाद स्त्री को किसी न किसी अवलम्ब की आवश्यकता तो पड़ेगी ही । अभी तो उस की सारी उमर उस के सामने पड़ी है । क्या न तुम ही वह सुदृढ़ आधार बन जाओ जिस का सहारा ले कर वह अपनी जीवन-यात्रा पूरी कर सके । पर हाँ, ऐसी दशा में तुम्हें एक बच्चे का भार भी मुफ्त में ही ग्रहण करना पड़ेगा ।”

अभय समझ गया कि उसे बनाया जा रहा है । सो व्यंगपूर्वक बोला, “क्यों ? मैं ही क्यों, तुम लोग भी तो वह सुदृढ़ आधार बन सकते हो ।

विक्रम ने फुरती बरती । बोला, “अवश्य बन सकते हैं । लेकिन प्यारे, देखती तो वह तुम्हें है भावपूर्ण और आशययुक्त नेत्रों से । हमें तो रीती दृष्टि से देखा जाता है ।”

मैं ने कहा, “जा कुछ भी हो, मैं नहीं मान सकता कि वह ऐसी है । उस के चेहरे से ही लगता है, वह बहुत दृढ़ है ।”

अभय ने विज्ञतापूर्वक कहा, “अरे, तुम्हें क्या पता औरतों की वास्तव ? कभी कुछ पढ़ो तो पता चले । डॉ. ब्रिल ने तो लिखा है, ऐसी भी औरतें होती हैं जो स्वस्थ पति के मौजूद होते हुए भी कभी-कभी दूसरे पुरुष की कामना करती हैं—वेरायटी [जायका बदलने] के लिए.....”

न जाने कैसी ग्लानि-सी मेरे मन पर छा गयी । मैं और कुछ न कह वहाँ से उठ गया । अभय कह रहा था, “वैसे तुम न मानो, यह बात दूसरी है ।”

इतवार को बात है । मैं अपने प्रकाशक के यहाँ से लौटा ही था कि विक्रम और अभय—जो कदाचित् अब तक मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे—छूटते ही बोले, “लो भाई, पड़ोसिन के सम्बन्ध में हम ने जो धारणा की थी, वह सच ही थी ।”

अभय ने मेरा मजाक-सा उड़ाते हुए कहा, “और ये हज़रत हमारी बात सच ही नहीं मान रहे थे !”

उन लोगों के जोश को देख कर मैं सहसा आश्चर्य में पड़ गया । मालूम करने की कोशिश की, आखिर बात क्या है ?.....

और तब मालूम हुआ कि अभी धोवन आयी थी । उसी ने बताया, पड़ोसिन बीमार युवक की दूसरी पत्नी है । यह लड़कियों के किमी स्कूल में मिस्ट्रेस थी । तभी इस का युवक से परिचय हुआ । उस समय युवक की पत्नी जीवित थी, जो टॉग को हड्डी के नासूर के कारण लम्बे अरसे से खाट पर थी । इसी दौरान इन लोगों के परिचय ने प्रेम की शकल धारण की और धीरे-धीरे ये प्रेम इतना अधिक बढ़ा कि युवक ने बीमार पत्नी के जीवित रहते ही उस की छाती पर सौत ला पटकी । पहली पत्नी इस धक्के के बाद और अधिक न जी सकी । उस को मौत के बाद से ये लोग मजे में रह रहे हैं । युवक की माँ और बड़े भाई तो इस शादी के कारण सख्त नाराज़ हैं, और इन लोगों से विशेष सम्बन्ध नहीं रखते । बूढ़ी माँ का तो ये ख्याल है कि इस पढ़ी-लिखी लड़की ने छल-बल से उस के सीधे-सादे लड़के को फँसा लिया है । जितने भी दिन यह देहरादून में उन के पास रही, उन्होंने इस से घर की बहू का-सा बर्ताव नहीं किया । अब चार-पाँच साल से तो ये लोग बाहर ही हैं । युवक की पहली पत्नी से जो लड़का है वह वहीं अपनी दादी और लाऊ के पास रह कर पढ़ रहा है । युवक पहले किसी अच्छे ओहदे

पर था, अब डेढ़-दो साल से तो बीमार है। चंद दिनों का मेहमान समझो.....

बात पूरी कर विक्रम ने बहुत गूढ़ ढंग से सिर झिलाया—इस भाव से, ‘देखा, हम क्या कहते थे?’....

अभय सिगरेट सुलगता हुआ इतमीनान से बोला, “अब तुम देखना, इस युवक की मौत के बाद यह किसी और को फँस लेगी। छः महीने के भीतर ही इस ने कोई दूसरा घर न ढूँढ लिया तो मेरा नाम अभय से बदल कर और कुछ रख देना।”

“हाँ-हाँ” विक्रम ने अत्यंत स्वाभाविकता पूर्वक कहा, “भाई, उस के सामने उस का सारा भविष्य है, और फिर साथ में उमड़ती नदी की तरह उस की यह जवानी....दूसरा घर न बसायेगी तो जायेगी कहाँ? हवा खा कर तो कोई ज़िंदा नहीं रह सकता। और पति के साथ यह सती हो जाय, ऐसा भी मुझे कोई लक्षण नहीं दीखता।”

“बल्कि लक्षण तो इस के विपरीत हैं” अभय ने आँख मारते हुए कहा और हँस पड़ा।

“अभय अब तुम फौरन ही अपना प्रार्थना-पत्र भेज दो। उसे अभी से मालूम हो जाना चाहिये कि तुम भी उम्मीदवारों में से एक हो।” विक्रम ने हँसते हुए कहा।

“अवश्य” अभय ने खिलखिल ने का प्रयास किया, “बच्चे की देख-भाल तुम अपने ऊपर ले लेना। रही बच्चे की माँ, सो उस की देखभाल मैं स्वयं कर लूँगा।”

दोनों ने इस पर एक ऊँचा कड़कड़ा लगाया।

मेरे लिए अधिक बैठना कष्टप्रद हो गया। बात टालने की गरज़ से मैं ने कहा, “हटाओ यार, वह कैसी भी हो और कुछ भी करे, मुझे क्या? मैं ने उस के चाल-चलन का ठेका थोड़े ही लिया है! वह

कुहासा और किरण]

जहन्नुम में जाये, मुझे मतलब ?” और उठ कर अपने कमरे में चला आया। वैसे चाहता तो था, इन दोनों से खूब बहस करूँ—आखिर धोवन को यह सब कैसे मालूम हुआ ? पड़ोसिन ने स्वयं ही तो बताया होगा। यदि वह इसे कलंक-कथा समझती तो सब से छिपा कर न रग्वती ? स्वयं ही किसी दूसरे को क्यों बताती ?....और फिर इस कथा में कलंक के लिए तो कोई स्थान है भी नहीं। क्या प्रेम करना पाप है ? हो सकता है, अपने प्रेम-पात्र के दुःख तथा उस की परेशानियों को बटाने के लिए ही पड़ोसिन ने उस से विवाह किया हो।....लेकिन मैं ने बहस न की। जानता था कि अभय और विक्रम बहस करने में निष्णात हैं। बात को कहीं और ले उड़ेंगे।

आगे कहने को अब और अधिक कुछ नहीं रह जाता। एक पन्धवाड़े के अन्दर ही बीमार युवक का देहांत हो गया। हम उम समय प्रेस में थे। मुहल्ले के एक वृद्ध सज्जन दयाल बाबू ने फोन कर हमें यह दुःसंवाद दिया और शीघ्र आने की प्रार्थना की। कहा, वह स्त्री बेचारी अकेली और निस्महाय है। वैसे यह दुर्घटना सम्भाव्य थी, लेकिन तब भी खबर सुन हम धक् से रह गये। हमारे घर पहुँचने तक मुहल्ले के काफी आदमी एकत्र हो गये थे। घर में औरतें थीं। किसी प्रकार की—चिल्लाने या रोने को—आवाज़ नहीं थी। केवल एकत्रित औरतों की दबी हुई-मी खुसफुसाहट सुनायी पड़ रही थी। हाँ, जब हम अस्थी उठा चलने लगे तब हमें नन्हें अशोक के सुबकने की आवाज़ सुनायी दी—“डैडी जी !....हाय डैडी जी !” और सहसा उस अज्ञात युवक की मृत्यु के प्रति हम कातर हो उठे। हमारा हृदय भर आया और हमारी बालू जैसी सूखी आँखें भीगने लगीं.....

चौथे दिन शाम की बात है : अँधेरा हो चुका था। हम लोंग पार्क से टहल कर लौटे थे और बैठे बातचीत कर रहे थे कि दरवाजे पर एक मधुर स्वर सुनायी दिया, “मैं अंदर आ सकती हूँ ?” हम भड़भड़ा कर उठ बैठे। देखा, सामने पड़ोसिन महिला और नन्हा अशोक खड़े हैं। दोनों ने साफ कपड़े पहिन रखे हैं। हमारे “हाँ हाँ। आइये न” कहने पर वे आगे बढ़ आये। मैं ने देखा, महिला पर पड़ी विपाद की छाया अधिक प्रगाढ़ हो गयी है। ऑलैं भारी और सूजी-सी थीं जैसे अधिक राने पर हो जाया करती हैं। वैसे चेहरे से लगता था कि अपने को काफी संयत किया गया है।

नमस्ते कर महिला बाली, “क्षमा कीजियेगा, मैं ने आप लोगों को असमय कष्ट दिया। लेकिन विवशता थी।” तब अपने बैग से तार का एक फार्म निकालती हुई बोली, “कुछ ही घंटे पहिले मुझे देहरादून से उन बी मों जी का यह तार मिला है कि बड़ा लड़का, जो वहाँ अपनी दादीजी के पास था, सख्त बीमार है। चेचक निकल आयी है। और मुझे शीघ्र ही उस के पास पहुँच जाना चाहिये। वैसे दो-तीन दिन में तो मैं स्वयं ही यहाँ से जाने वाली थी। सारा सामान पैक कर लिया था। बस, कुछ बर्त्तन और थोड़ी-सी किताबें रह गयीं थीं; और इस सामान को बुक कराना रह गया था। लेकिन अचानक ही यह तार आ गया है और मुझे अभी जाना पड़ रहा है। इस कारण आप लोगों से प्रार्थना है कि आप अपने सुभीतेनुसार कल-परसों तक वचे हुए सामान को भी लकड़ी के बक्स में पैक कर, सारे सामान का देहरादून बुक कर दीजियेगा—‘पे फ़ाइट’। पता मैं आप को दिये देती हूँ। मैं अपने साथ कपड़ों का एक ट्रंक और बिस्तर ले जा रहा हूँ। एक और कष्ट भी कीजियेगा। मकान की चाबी मालिक-मकान को सौंप कर मकान उस के हवाले कर दीजियेगा। इन अनुग्रह के लिए मैं आप

कुहासा और किरण]

की सदा आभारी रहूँगी। यह लीजिये मकान की चाबी, और यह है देहरादून का पता।” उस ने चाबी और कागज़ के एक टुकड़े पर स्वच्छतापूर्वक लिखा अपना पता हमारी ओर बढ़ाते हुए कहा।

कुछ सँभल कर मैं ने प्रश्न किया, “लेकिन अब आप आगे, यानी भविष्य में, क्या करेंगी?”

एक क्षीण-सी मुस्कराहट चेहरे पर ला कर उस ने उत्तर दिया, “मैं पहले जिस स्कूल में मिस्ट्रेस थी, फिर उसी में चली जाऊँगी। मेरी प्रिंसिपल मुझ से प्रसन्न हैं। मुझे फिर जगह मिल जायेगी। मेरे और मेरे दो बच्चों के गुज़ारे भर के लिए मुझे मिल ही जायगा।”

कमरे में चुपौ ली गयी। लगभग एक मिनट बाद वह बोली, “मैं अचानक आप के पास यह आशा लेकर—कि आप मेरी सहायता अवश्य करेंगे—कैसे चली आयी, इस पर आप आश्चर्य कर रहे होंगे; क्योंकि पड़ोसी हाने पर भी आप लोग मेरे लिए अपरिचित ही थे। किंतु क्या करती, दूसरा कोई चारा भी तो न था। जीवन-पथ को सरल-सुगम में ने कभी नहीं माना है। इसी कारण पथ की बाधाओं तथा डगमगाते मोड़ों पर मार्ग को अवरुद्ध देखते हुए भी मैं ने किसी अन्य की सहायता या सम्बल की अपेक्षा नहीं की है—जानती थी संसार में प्रत्येक व्यक्ति अपने ही भार व अपनी समस्याओं से इतना अधिक ग्रस्त है कि उस के लिए किसी अन्य की सहायता करना अत्यधिक कठिन है। आप मनोवैज्ञानिक पदावली में इसे मेरा ‘अहं’ या अभिमान भी कह सकते हैं, मुझे स्वीकार करने में रंच-मात्र हिचकिचाहट न होगी। किंतु अभी जो दुर्घटना हुई है उस के बाद भी मैं इतना बड़ा अभिमान कर सकूँ—इतनी शक्ति व दुस्साहस अब मेरे अंदर नहीं है। ईश्वर ने मुझे इस योग्य रखा ही नहीं है। ऐसी दशा में मुझे आप के पास सहायता की प्रार्थना करने आने में कोई भिन्नक न

हुई। मैं तो गिड़गिड़ाने तक के लिए प्रस्तुत हो कर आयी थी..... इतनी सेवा व टहल-पानी के बाद भी मैं उन्हें न बचा सकी। यह मेरा दुर्भाग्य है; किंतु यदि अपनी थोड़ी भी असावधानी के कारण मैं अपने बड़े लड़के की रक्षा न कर उस का अनिष्ट कर डालूँगी तो कदाचित् इस पाप के लिए मैं अपने को जीवन भर क्षमा न कर सकूँगी।” उस का गला भर आया और आँखों में आँसू छलछला आये। अशोक के सिर पर हाथ फेरती हुई वह फिर कहने लगी, “उन की मेरे पास अनेक निशानियाँ हैं—एक यह भी है, लेकिन बड़ी बहिन जी की तो एकमात्र निशानी वही बालक है जो आज चारपाई पर पड़ा है। उस की रक्षा तो करनी ही होगी। मैं आप लोगों के लिए ईश्वर से भंगल-प्रार्थना करती हूँ। आप भी प्रार्थना करें कि मेरा बीमार बालक स्वस्थ हो जाय। ले-देकर अब ये ही बच्चे तो अपना सहारा हैं।”

रुक कर साड़ी के आँचल से अपने आँसू पोछते हुए उस ने कहा, “आप लोगों की इस कृपा के लिए मैं मृत्यु पर्यंत आभारी रहूँगी।” फिर नमस्ते कर बोली, “अच्छा, मैं अब चलूँगी। बाहर तौंगा खड़ा है।” वह दरवाज़े की ओर बढ़ने लगी।

सहसा घूम कर, खड़े हो उस ने बच्चे से कहा, “अशोक, अपने मामाजी को नमस्ते नहीं की? नमस्ते करो बेटे।”

और तब अशोक ने बहुत प्यारे ढंग से, कंधे तक सिर झुका कर हम तीनों को बारी-बारी से नमस्ते की। लेकिन हम ने तो पत्थर के बुतों को मात दे रखी थी। हमारे मुँह से एक भी शब्द तक न निकल सका। हाँ, हमारे हाथ न जाने किस अज्ञात प्रेरणावश अपने आप जुड़ गये।

महिला ने एक बार फिर मूक नमस्ते की, और अशोक की उँगली

कुहासा और किरण]

पकड़ बाहर निकल आयी । थोड़ी देर उस के चप्पलों की आवाज़ बुनायी दी, और उस के बाद वह भी बंद हो गयी ।

हम तीनों ऐसे खड़े थे जैसे किसी ने हमारे सब कपड़े खींच हमें बिल्कुल नंगा कर दिया हो, और हम एक दूसरे से क्या, स्वयं अपने आप से ही लज्जा कर रहे हों ।

थोड़ी देर पश्चात् हम ने तोंगे के जाने की आवाज़ सुनी, किंतु हमारी मूर्तिमत्ता में तनिक भी अंतर न आया । दो लेखक और एक मनोवैज्ञानिक लज्जित भाव से खड़े थे । अभय हाथ के नाखूनों पर अपनी दृष्टि गड़ाये हुए था; विक्रम चाबी को शून्य व फीकी दृष्टि से देख रहा था; और मैं सिर नीचा किये पैर के अँगूठे से फर्श कुरेद रहा था । एक दूसरे की ओर देखने तक का साहस हम में न था ।

अभय, विक्रम और मैं—हम तीनों फेल हो गये थे.....

विवरण

इस दुर्घटना के सम्बन्ध में लोगों की खासा कुतूहल है। स्वाभाविक भी है। एक दोस्त दूसरे की हत्या कर डाले तो क्या लोग चौकेंगे नहीं? जिस किसी ने भी यह खबर सुनी, हैरत में रह गया। यह कैसे सम्भव हो सकता है कि कोई व्यक्ति अपने प्रगाढ़ मित्र का गला घोट उसे मार डाले?....लेकिन खबर तो सच है। विश्वास करना ही होगा। इस के बाद दूसरी सीढ़ी आती है—जिज्ञासा, कुतूहल। यानी क्यों मारा?.... और इस प्रश्न के उत्तर में लोग अनेक समाधान पेश कर रहे हैं। समझ लीजिये कि जितने मुँह हैं उतनी ही तरह की बातें सुनायी पड़ रही हैं। कोई कहता है, दोनों मित्रों का एक ही लड़की से प्रेम था, और अब वे दोस्त न रह रकीब बन गये थे.....कोई कहता है कि एक दोस्त को दूसरे के कुल ऐसे गुप्त भेद मालूम हो गये थे जिन का छिपा ही रहना अच्छा था.....कोई कहता है, जिस की हत्या हुई उस

कुहासा और किरण]

ने अपने दोस्त का मनीऑर्डर खुद डकार लिया था और जब दोस्त ने इस बाबत पूछा था तो साफ़ मुकर गया था। दोस्त को उस की नीचता पर क्रोध आ गया था और उस ने तैश में आ कर उस की हत्या कर डाली थी.....आदि-आदि। और भी बहुत तरह की बातें लोग कह रहे हैं, जो मेरे विचार से सपने में भी इस हत्या का कारण नहीं हो सकतीं। चीज़ यह है कि लोग इस हत्या की तह तक पहुँच ही नहीं सके हैं। वे यों ही अटकल भिड़ा रहे हैं, या यों कह लीजिये कि अँधेरे में टामक-टोयें मार रहे हैं। मैं इस हत्या का सही कारण जानता हूँ, बतला भी सकता हूँ; लेकिन दिक्कत यह है कि कोई मुझ से पूछता ही नहीं। आप प्रश्न कर सकते हैं, मैं क्या कोई ज्योतिषी या दिव्य शक्ति-प्राप्त कोई सिद्ध हूँ ?....इस प्रश्न का उत्तर भी मेरे पास है। एक तो लेखक होने के कारण, दूसरे राजेन्द्र और वीरेश्वर दोनों का मित्र होने के कारण, और तीसरे राजेन्द्र की ही परिस्थिति व मनःस्थिति में होने के कारण मैं इस अनदेखी दुर्घटना का सही व सच्चा विवरण आप को दे सकता हूँ; हालाँकि हत्या के समय मैं वहाँ उपस्थित न था। हो-इल्ला सुन कर कोई दो-तीन मिनट बाद तो मैं आही गया था। मेरे सामने ही राजेन्द्र ने बदहवासी के आलम में कमरे का दरवाज़ा खोला था; और सामने खड़ी भीड़ को देख कुछ थरते-से स्वर में स्वीकार किया था, “मैं ने वीरेश्वर को जान से मार डाला है। मुझे गिरफ्तार कर लो।”

तो लगे हाथ मैं इस दुर्घटना का सारा ब्यौरा आप लोगों को दे ही दूँ, जिस से और लोगों की तरह आप भी इस हत्या का कोई उलटा-सीधा कारण न सोचें।

हाँ, तो उस दिन सुबह से ही राजेन्द्र कुछ अनमना-सा था। बात यह थी कि पैसे के मामले पर रात को होटल-मैनेजर से उस की एक

हलकी-सी झड़प हो गयी थी; और उस ने अंत में झल्ला कर यह कह दिया था कि इस बार के ड्यूज़ चुका कर वह यह ज़लील होटल हमेशा के लिए छोड़ देगा। कुल तीस-बत्तीस रुपये ही की तो बात है, इसी पर ये होटल वाला भिक्कभिक्क करता है। राजेन्द्र ने सोचा, वह दूसरे ही दिन रुपयों का कुछ प्रबंध कर इस का हिसाब साफ़ कर कहीं दूसरी जगह अपना प्रबंध कर लेगा। शहर में क्या यही एक होटल रह गया है ? जिस के मुँह पर रुपये मारेगा, वही उसे रहने के लिए जगह देगा। वह कहीं मुफ्त नहीं रहना चाहता, सिर्फ़ इतना है कि आजकल उस की नौकरी नहीं है, इस कारण पैसे देने में देर-अबेर हो ही जाती है। खैर, उस के पास तो पैसे नहीं हैं, इस कारण उसे चुकाने में ढील करनी पड़ती है; बाकी उस ने तो देखा है कि जिन के पास हज़ारों होते हैं वे लोग तक जब पैसा देने का अवसर आता है तो कन्नी काट जाते हैं, बग़लें झोंकने लग जाते हैं या टालमटोल ही कर देते हैं। और यदि पैसे मँगने वाला बहुत ही ज़रूरतमंद [पैसे वालों की नज़रों में 'बेशर्म'] हुआ और टला नहीं तो हुज्जत, गाली-गलौज [और कभी-कभी हाथापाई तक] पर उतर आते हैं। राजेन्द्र ने कई बार इस तरह की घटनायें बड़े नज़दीक से देखी हैं।

खैर। तो रात भर राजेन्द्र उधेड़-बुन में पड़ा रहा था। एक युनिवर्सिटी-प्रोफ़ेसर की थीसिस उस ने टाइप की थी—कोई चार-एक महीने पहले। उस का मेहनताना कुछ तो उसे मिल गया था। और कुछ-कोई चालीस-बयालीस के लगभग—अभी बाकी था। अपनी ही युनिवर्सिटी के प्रोफ़ेसर होने के कारण राजेन्द्र कुछ लिहाज़-सा करता हुआ अब तक खामोश था। आवश्यकता की तीखी नोक चुभने पर कई बार उस के मन में आया भी कि बेशर्म बन कर प्रोफ़ेसर साहब को याद दिला ही दे कि उन्हें इस ग़रीब के कुछ पैसे देने हैं। लेकिन

कुहासा और किरण]

प्रत्येक बार उस की [मध्य-वर्गीय] शालीनता उस का हाथ थाम लेती । वह सोचने लगता, प्रोफ़ेसर साहब क्या सोचेंगे ?....कहेगे, कितना ओछा लड़का है ! हमारा तक विश्वास इसे नहीं हुआ ! हम इस के चालीस-पचास रुपये ले कर कहीं भाग जाते ?....और यही सब विचार उसे अपनी नाक की नोक पकड़े रहने पर बाध्य कर देते । वह किसी और से अपने सिर उधार कर लेता, लेकिन प्रोफ़ेसर साहब के पास न जाता । अगर भूले-भटवे वह कहीं दीख भी जाते तो उन से कतरा जाता कि कहीं वह ये न समझें कि राजेन्द्र अपने पैसे माँगने आया है....लेकिन रात को करवटें बदलते हुए उस ने तय किया कि अपने चेहरे के नक्शे से अपनी नाक का ध्यान बिल्कुल हटा कर, वह कल सुबह ही प्रोफ़ेसर साहब से पैसे माँग लायेगा । अपनी इस धृष्टता [?] की पुष्टि के लिए उसे एक और तर्क भी सूझ गया कि प्रोफ़ेसर साहब बहुत व्यस्त आदमी हैं । नयी डॉक्टरेट के कारण उन का मान सम्मान, आदर-प्रतिष्ठा और भी बढ़ गयी है । राजेन्द्र को थिसिस टाइप करने के पैसे देने हैं, कहीं यह बात उन के ध्यान से उतर ही न गयी हो । इस ख्याल से उस का निश्चय तब और भी दृढ़ हो गया ।

सुबह उठ, मुँह-हाथ धो कर राजेन्द्र ने हॉटल के छोकरे से चाय लाने को कहा । छोकरे ने मुक्त भाव से—जिस में सौ प्रतिशत अवज्ञा साफ़ झलक रही थी—इनकार करते हुए कहा, “मनीजर ने बोला है, जब तक राजेन्द्र बाबू अपना पिछला हिसाब नहीं देता, उन का कोई भी आर्डर पूरा मत करो ।”

छः आने रोज़ के एक नौकर से इतनी बदतमीज़ी भरी बात सुन राजेन्द्र तिलमिला उठा । उस के जी में आया कि वह उस छोकरे का कान पकड़ बाहर निकाल दे, लेकिन अपनी तत्कालीन परिस्थिति का

ख्याल कर उस ने वह कड़वी गोली चुपचाप निगल ली और विषाक्त दृष्टि से छोकरे को देखता हुआ बाहर निकल गया ।

राजेन्द्र जिस समय प्रोफ़ेसर साहब के मकान पर पहुँचा, उस समय प्रोफ़ेसर साहब सुबह का अखबार समाप्त कर स्नानागार में घुस चुके थे । राजेन्द्र बाहर बरांडे में बैठ गया और रेडियो सुनने की मुद्रा बना कर रेडियो की ओर देखने लगा, हालाँकि उस का मस्तिष्क रेडियो से निकले एक भी शब्द को ग्रहण करने के लिए बिल्कुल तत्पर न था । उस के कान रेडियो सुन रहे थे, जब कि वह अपने मस्तिष्क सहित कहीं और की सोच रहा था ।

प्रोफ़ेसर साहब बाहर आये । राजेन्द्र को देखा और बहुत प्रेम से हाथ मिला कर मिले । फिर उस से बिना कुछ पूछे अपनी सुनाने लगे— डो. लिट. की डिग्री पाने पर किन-किन लोगों ने उन्हें बधाइयाँ भेजीं; उन की थीसिस के प्रकाशन के लिए कौन-कौन प्रकाशक, कितने-कितने के चेक लिये उन के घर के चक्कर काट रहे हैं; थीसिस के अन्य भाषाओं में अनुवाद के प्रकाशनार्थ किन-किन लोगों से पत्रों का आदान-प्रदान हो रहा है, आदि-आदि ।

इस सब बकवास में सवा नौ के लगभग समय हो गया । राजेन्द्र यही सोचता रह गया कि प्रोफ़ेसर साहब अपना प्रिय टॉपिक समाप्त करें तो वह अपना मन्तव्य प्रकट करे । जब उन के नौकर ने आ कर उन्हें ध्यान दिलाया कि नौ बीस हो गये हैं तो वह कुछ हड़बड़ाते-से उठे और राजेन्द्र से बोले, “मिस्टर पांडेय, मुझे माफ़ करना । आज मेरा पहला पीरियड है और मुझे अभी नाश्ता भी करना है । मैं तो अब चलूँगा । आप फिर आइयेगा । मिलते रहा कीजिये ।”

राजेन्द्र तब अधिक ज़ब्त न कर सका था । खड़े होते हुए उस ने कहा, “आज मैं आप के पास एक बहुत आवश्यक काम से आया था ।

कुहासा और किरण]

मुझे आप से कोई चालीस-एक रुपये के लगभग और मिलने हैं—मैं ने आप का थिसिस टाइप किया था, उस सिलसिले में। आजकल मेरा हाथ बहुत तंग है। इसलिए चाहता हूँ कि आप से रुपये मिल जायें ताकि मेरी कुछ बात बन जाय। यदि आप दे सकें तो बहुत कृपा होगी।” इतने साफ तरीके से कहने के लिए उसे बहुत साहस एकत्र करना पड़ा था। बात पूरी कर वह हँफने लगा था।

प्रोफेसर साहब ने बौखलायी-सी दृष्टि से उसे देखा और बोले, “देखिये, इस वक्त तो मैं कुछ जल्दी में हूँ, आप....?”

राजेन्द्र ने बात पूरी की, “आज शाम को आऊँ ?”

प्रोफेसर साहब ने और अधिक बौखला कर उत्तर दिया, “नहीं, आज शाम को नहीं। थिसिस के सिलसिले में आज मैं ने वाइस चांसलर, हैड्स ऑफ़ दि डिपार्टमेंट्स और प्रोक्टर को एक पार्टी दी है। हाँ, आप कल शाम आ सकते हैं....ठीक। आप कल शाम को ही आइये। तब बात करेंगे। अच्छा नमस्कार।” और वह बहकते-से अंदर चले गये थे।

राजेन्द्र कुदता हुआ होटल वापस लौट आया। उस का तो आज खाने तक का ठिकाना नहीं है, और उन साधन-सम्पत्तों की आज पार्टी है—पार्टी, जहाँ खाना नहीं, वरन खाद्य पदार्थों को चख कर नष्ट होने के लिए छोड़ देना सभ्यता है। ठीक भी तो है। पार्टी में खाने कौन जाता है ! नीयत तो सब की भरी रहती है। एक बड़ी गंदी गाली उस की ज़बान पर आयी जो उस ने उबकाई की तरह रोक ली जो अक्सर उसे अपने होटल का खाना खा लेने पर आया करती थी।

तो दो-एक दिन खाने का कोई डौल नहीं है—राजेन्द्र ने सोचा; और इस दुःख व कुढ़न में भी उसे हँसी आ गयी। चारपाई पर पड़ा राजेन्द्र सोचने लगा—यार क्या जिंदगी है यह !.... साधारण तो कोई

बात होती ही नहीं अपने जीवन में । जो भी घटना होती है, सच्ची नहीं लगती । किसी उपन्यास या कहानी से चुरायी मालूम पड़ती है....

वही छोकरा अपने फटे कमीज की आस्तीन से अपनी बहती नाक पोंछता हुआ आया और राजेन्द्र के हाथ में एक पोस्टकार्ड पकड़ा कर अलग खड़ा हो गया और राजेन्द्र की शकल को इस तरह देखने लगा जैसे वह कोई आईना हो । राजेन्द्र पत्र पढ़ने लगा । उस के छोटे भाई का पत्र था । देहरादून से आया था । इधर-उधर को अन्य बातों के अतिरिक्त अंत में रेखांकित अंश द्वारा गर्म कोट के लिए फिर जोर दे कर लिखा गया था । दो महीने से वह गरीब गर्म कोट के लिए लिख रहा था । इस बार उस ने कुछ व्यंग के तौर पर लिखा था, “शायद आप को मेरी ज़रूरत का एहसास नहीं है । तभी तो मुझे, बार-बार लिखना पड़ रहा है । आप एक गर्म जगह पर हैं, जहाँ गर्म कपड़े की आवश्यकता नहीं पड़ती; लेकिन आप यह क्यों भूल जाते हैं कि मैं देहरादून में हूँ और आप के शहर व देहरादून में ठंड के लिहाज से ज़मीन-आस्मान का अंतर है । वैसे आगे आप की मर्जी । लिखना मेरा फर्ज था, सो आप को लिख दिया.....”

पत्र समाप्त कर राजेन्द्र की आँखों में आँसू छलक आये । अपनी असमर्थता व हीनता पर उसे क्षोभ हुआ । उस के दिल को सचमुच ठेस लगी थी.... क्या जीवन इन्हीं असमर्थताओं, लाचारियों, कष्टों और हसरतों से घिरा हुआ बीतेगा ? क्या आखिर तक इसी तरह पापड़ बेलने होंगे ? सारी उम्र परेशानियों के बीच ही निकल जायगी ! सुख-शांति कभी नसीब न होगी ?....

छोकरे ने जोर से नाक मुड़मुड़ा कर उस का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया । राजेन्द्र को अपनी ओर देखते ही उस ने प्रश्न किया,

दुहासा और किरण]

“क्यों बाबू, कोई मनीऑर्डर वगैरा की ख़बर है चिट्ठी में?” यही बात पूछने के लिए वह इतनी देर तक खड़ा रहा था ।

इस बार गाली सचमुच ही राजेन्द्र के मुँह से निकल गयी । छोकरा लाख मूर्ख सही, इतना कोरा तो न था कि इस डपट का मतलब न समझता । खिसिया कर चुपचाप बाहर सरक गया ।

राजेन्द्र ने घड़ी देखी । ग्यारह बज चुके थे । वह अभी तक नहाया नहीं था । धूप में पैदल चार-पाँच मील का चक्कर काट आने के कारण उस का बदन कुछ गँदला-सा था । नहाने से तबियत खुल जाती, इस में तो कोई संदेह ही न था; किंतु नहा लेने पर भूख दुगुनी तेज़ी से सताने लगती, यह उस का पिछला अनुभव उस से कह रहा था । और खाने के मामले में आज लाल भंडी थी, इस कारण उस ने तय किया कि यह सफ़र वाला मूड ही बरकरार रहे और नहाने के विचार को गोल किया जाय । सो वह वैसे ही उलटा-सीधा जा कर चारपाई पर पड़ रहा । रात उसे ठीक तरह नींद नहीं आयी थी । इस कारण पड़ते ही उस की आँखें बंद हो गयीं और भविष्य के सम्बन्ध में सोचता ही सोचता वह सो गया । कमरे का दरवाज़ा वैसे ही खुला पड़ा रहा ।

कोई दो बजे के लगभग कई हवकोले खाने पर उस की नींद खुली । आँख मिचमिचाते हुए उस ने देखा—वीरेश्वर सामने खड़ा उसे जगा रहा है । वीरेश्वर उस का लँगोटिया दोस्त था और चूँकि नौकरी पर था, इस कारण उस से अच्छी जगह, और उस से अच्छी तरह रहता था । वीरेश्वर से कोई तकल्लुफ़ न था, इस कारण आधी सोयी-जागी आवाज़ में राजेन्द्र ने कहा, “कमबख्त, थोड़ी देर और सोने दिया होता ! हम ग़रीबों के हिस्से में संसार की कोई चीज़ नहीं पड़ी है । सिर्फ़ नींद ही कभी-कभी हम पर दया कर, हमारा दुःख-दर्द

बटाने हमारे पास थोड़ी-बहुत देर के लिए आ जाती है, तो तुम्हारे जैसे बेरहम उस का भी पल्ला हम से छुड़वा देते हैं ।”

वीरेश्वर ने सिग्रेट का कश खींचते हुए ठहाका लगाने की कोशिश की जो उत्तरार्द्ध में खौंसी में बदल गयी और बोला, “बूदम बेज़ार, कब तक सोते रहोगे ? ज़रा घड़ी तो देखो—दो बज रहे हैं । याद भी है कुछ ! आज सवा तीन बजे ‘स्ट्रोम्बोली’ देखने जाना है । मैं तो आज इसी कारण ऑफिस से फ्रैंच लीव मार कर आया हूँ । चलो उठो, जल्दी करो । नहीं तो हाउस फुल हो जायगा । बहुत रश है पिकचर में ।”

“भाड़ू मारो ‘स्ट्रोम्बोली’ को ।” राजेन्द्र ने कुछ खीजे से स्वर में कहा, “मैं यहाँ हंगर स्ट्राइक मना रहा हूँ, तुम्हें ‘स्ट्रोम्बोली’ सूझ रही है । मुझे नहीं जाना है कहीं भी ।”

“वाह ! यह कैसे हो सकता है ? मैं तो ऑफिस से खास तुम्हारे ही लिए आया हूँ ।” वीरेश्वर ने कहा ।

“इस के लिए धन्यवाद । पर मैं आज तुम्हारे साथ नहीं चल सकूँगा । मेरा मूड ठीक नहीं है ।”

“तुम्हारा मूड ठीक कब रहता है ?” वीरेश्वर ने कुछ व्यंग्य से कहा, “तुम तो पैदाइशी मनहूस हो । अब यार ज़्यादा बोर मत करो । उठो । कपड़े बदलो और चुपचाप चले चलो ।”

“वीरेश्वर, देखो तंग मत करो । सचमुच मैं आज बहुत परेशान और दुःखी हूँ । मेरा मन बहुत खिन्न है ।”

“क्यों ? हुआ क्या ? आज किसी को दफ़ना कर आये हो ?” वीरेश्वर अभी तक गम्भीर नहीं हो पाया था ।

“नहीं, अभी तक तो नहीं । लेकिन अब जा रहा हूँ अपने को दफ़नाने । कोई ज़िदगी है यह ! कदम-कदम पर मुसीबतें, तंगी, मजबूरियाँ और अपमान ! जिन्हें मुझ से पैसे वसूलने होते हैं वे लोग

कुहासा और किरण]

तो भरे बाज़ार में मेरी गरदन नाप देते हैं; और जिन से मुझे लेने होते हैं, वे इतने व्यस्त होते हैं कि हफ़्तों सुबह-शाम उन के घर पर हाज़री बजानी होती है, तब कहीं नम्बर आता है और सुनवायी होती है। यहाँ अपना बज़ट फ़ेल हो रहा है, उधर छोटे भाई के लिए गर्म कांट बनवाना ज़रूरी है। पैंतीस-चालीस रुपये उसे भेजने हैं। कहाँ से भेजूँ ? क्या कर डालूँ ? कुछ समझ में नहीं आता। एक वह प्रोफ़ेसर साहब हैं न, मानवता के हिमायती, रैडिकल ह्यूमैनिस्ट, तीन महीने पहले जिन की थीसिस टाइप की थी, उस का पूरा पेमेंट उन्होंने अब तक नहीं किया। आज जा कर पैसा माँगा तो कल शाम आने को कहा। आज शाम उन के यहाँ वाइस-चांसलर की पार्टी है; और मेरी कल शाम तक भूख-हड़ताल है। यही मानवता है, जो सभ्यों और बुद्धिवादियों का एक विशिष्ट गुण है.....” राजेन्द्र जोश में आ गया था।

वीरेश्वर कुछ क्षणों तक चुप रहा, लेकिन उस के दिमाग़ में तो ‘स्ट्रोम्बोली’ घूम रही थी। इस कारण कुछ हलके तौर पर वह बोला, “यार, लानत भेजो इन बातों को। गुस्सा थूक दो और मेरे साथ चलो। तुम्हें पक्कर-हाउस में चाय पिलवा दूँगा। तुम्हारा मूड आज खराब है। तस्वीर में मैडिटरैनियन के बहुत ही खूबसूरत आउट डोरस हैं, और फिर इंग्रिड बर्गमैन की एक्टिंग !....तुम्हारी तबियत बहल जायगी। आओ, चलो। यहाँ बैठे-बैठे तो और कोफ़्त होगी।”

राजेन्द्र आग्नेय दृष्टि से वीरेश्वर को देखता हुआ बोला, “मैं कह चुका हूँ न, मैं कहीं नहीं जाऊँगा। तुम चले जाओ और उन आउट डोरस से अपना मन बहला लो। मुझे यहीं सड़ने दो।” उस के कहने के ढंग में कुछ ऐसी सख़्ती थी कि वीरेश्वर उस का प्रतिवाद न कर सका।

वीरेश्वर कुछ समय सोचता रहा। सहसा उसे ख्याल आया कि वह इस समय कोई खुशी की खबर सुना कर ही राजेन्द्र को प्रसन्न कर उसका मूड सुधार सकता है। बाद की बात बाद में देखी जायगी। बिजली की तेज़ी से एक विचार उस के मस्तिष्क में बौंद गया। उसे ध्यान आया—राजेन्द्र ने अपनी एक पुस्तक दो हजार एक रुपये के ‘कुमारचन्द्र पुरस्कार’ के लिए निर्णयार्थ भेज रखी है और पुरस्कार के निर्णय की प्रतीक्षा कर रहा है।

दो क्षण चुप रह कर वह अभिनय करता हुआ बोला, “अरे हाँ राजेन्द्र, तुम ने आज का अखबार देखा?”

“नहीं” राजेन्द्र ने बहुत रुखे ढंग से उत्तर दिया।

“तभी” वीरेश्वर ने मुस्करा कर कहा, “तभी तो तुम इतने गमगीन हो। अगर तुम सुबह अखबार पढ़ लेते तो शायद ‘स्ट्रोम्बोली’ दिखाने के लिए मुझे लेने तुम मेरे ऑफिस पहुँचते.....मैं इतनी देर तक जान-बूझ कर मज़ा लेने के लिए वह खबर तुम से छिपाये रहा।”

राजेन्द्र बिना हिले-डुले चुपचाप खड़ा रहा।

वीरेश्वर हँसा। तब बोला, “मिठाई खिलाओ मेरे दोस्त। तुम्हें सैकड़ों बधाइयाँ। तुम्हें तुम्हारी पुस्तक ‘मील के पत्थर’ पर दो हजार एक रुपये का ‘कुमारचन्द्र पुरस्कार’ मिला है। आज सुबह अखबार में यह खबर थी।”

राजेन्द्र कुछ क्षण अनिश्चय की अवस्था में खड़ा रहा। उस के बाद उन्माद की सी अवस्था में वह वीरेश्वर की ओर झपटा और उस की दोनों बाँहें पकड़ उसे झकझोरता हुआ बोला, “तुम सच कह रहे हो वीरेश्वर ! सच !.....मेरी कसम खाओ।”

वीरेश्वर राजेन्द्र को इस दशा में देख घबरा गया, लेकिन घबराहट की अवस्था में भी उस के मुँह से झूठ ही निकला, “तुम्हारी कसम। मैं क्या तुम से झूठ बोल रहा हूँ ?”

कुहासा और किरण]

कोई एक मिनट तक राजेन्द्र वीरेश्वर को पागलों की तरह देखता रहा । उस के बाद उस ने एक ज़ोर का ठहाका लगाया और उस के खतम होने पर एक दूसरा ठहाका शुरू किया । अब वह तेज़ी से आगे बढ़ा और सामने की छोटी मेज़ पर रखी चीज़ों—किताबों, फाइलों चिट्ठियों, एश ट्रे आदि को इधर-उधर बिखेरने लगा । वह हँसता जा रहा था और कहता जा रहा था, “अब क्या परवाह है किसी की ! मिले भी तो एकदम दो हज़ार ! वाह भगवान, क्या कहने हैं तुम्हारे ! भक्तों को कष्ट में नहीं देख सकते...इस होटल वाले, कर्मिने, के साल भर के पैसे भरता हूँ । नरेन्द्र के लिए गर्म कोट नहीं, गर्म सूट सिलवाता हूँ—एक नहीं, दो-दा । क्या समझे वीरेश्वर ?.....”

उस ने फिर ज़ोर का एक ठहाका लगाया और मेज़ पर रखी अंतिम चीज़ स्वान इंक की भरी दवात को उठा कर ज़ोर से सामने की दीवार पर दे मारा । दवात तड़ाक की आवाज़ करती हुई फव्वारे की तरह फूटी और तमाम स्याही दीवार, ढँगे हुए कपड़ों और फर्श पर बिखर कर नयी दुनिया के नक्शे बनाने लगी । राजेन्द्र ने फिर एक गगनचुम्बी ठहाका लगाने का प्रयास किया ।

वीरेश्वर अब सचमुच ही बहुत अधिक घबरा उठा । उस ने इधर-उधर देखा कि और कोई उस की सहायता को आ जाय, लेकिन दरवाज़ा बंद था जो कि वह स्वयं ही बंद कर आया था । साहस कर वह अपने आप आगे बढ़ा और राजेन्द्र को थामता हुआ बोला, “राजेन्द्र, सुनो तो....ज़रा सुनो तो । तुम्हें पुरस्कार नहीं मिला है । वह तो मैं ने तुम्हारे साथ मज़ाक किया था, तुम्हारा मूड सुधारने के लिए.....उस बात में कोई सच्चाई नहीं है...तुम इतने अधिक जामे से बाहर न हो !”

राजेन्द्र एकदम रुक गया । एक जड़ दृष्टि से वीरेश्वर की ओर देखते हुए उस ने पूछा, “तुम सच बोल रहे हो ?”

“सच... बिल्कुल सच....पुरस्कार का अभी निर्णय ही नहीं हुआ है। तुम्हारी तबियत बहलाने के लिए वह तो मैं ने मज़ाक किया था।”

राजेन्द्र की आँखें मशाल की तरह प्रदीप्त हो उठीं। वीरेश्वर की ओर धीरे-धीरे बढ़ते हुए उस ने कहना शुरू किया, “तो तुम ने मेरे साथ मज़ाक किया—इतना ख़तरनाक मज़ाक ! मैं, जो अपने आप ही मरा हुआ था, उसे तिलमिलाने के लिए इतना ताँखा नशतर मेरी छाती में चुभाते हुए तुम्हें दया न आयी बेरहम ? तुम मेरे दोस्त बनते हो। लेकिन मेरी खुशी तुम्हारी खुशी है। मेरा रंज तुम्हारा रंज नहीं है। तुम मेरी हालत का समझते बूझते भी, उसके सुधार के लिए ज़रा प्रयत्न न करते हुए, मेरे साथ ऐसा क्रूर मज़ाक कर सकते हो ! तुम इंसान नहीं, पत्थर हो। तुम्हारे अंदर किसी का दुःख-दर्द समझने का माहा ही नहीं रहा है। कोई तीसरा आदमी ये मज़ाक करता तो मैं ख़याल तक नहीं करता। लेकिन तुम ने दोस्त होते हुए मेरी मजबूरियों, असमर्थताओं और लाचारियों का यह जो मज़ाक उड़ाया है इसे मैं कभी क्षमा नहीं कर सकता। जानवर, तुम्हें मेरी इस फटी हालत तक पर तरस नहीं आया ?... तुम.....तुम ज़िंदा रहने योग्य नहीं हो.....”

एक प्रचंड हिंसक भाव राजेन्द्र की आँखों में चमक उठा। उस ने भ्रमद्वा मार कर वीरेश्वर का गला जकड़ लिया और अमानुषक शक्ति से उसे दबाना शुरू किया। वीरेश्वर इतना अधिक बौखला गया था कि वह अपने वचाव के लिए कुछ भी न कर सका। उस की आँखों के आगे नाले-सफ़ेद सितारे झिलमिलाने लगे और कानों में जैसे एक साथ कई भीगुर बोलने लगे। उस के गले से ‘आSSS !’ की आवाज़ निकली जो अंत में ‘ईSSS !’ में समाप्त हो गयी। उस की आँखें बाहर निकल पड़ीं, जीभ काफ़ी बाहर आ गयी। और देह निष्प्राण हो कर

कुहासा और किरण]

मिट्टी के लोदे की तरह एक ओर गिर पड़ी। राजेन्द्र ने कुछ क्षण मृत शरीर की ओर देखा और तब उसे ध्यान आया कि उस ने अपने सब से प्रिय मित्र की हत्या कर डाली है।

कमरे के अंदर शोर-गुल सुन कर बाहर बहुत से आदमी एकत्र हो गये थे कि माजरा क्या है ! मैं भी भागा-दौड़ा वहाँ पहुँच गया था और कमरे की ओर उत्सुकता से देखने लगा था।

बस। इस के बाद तो कोई खास बात नहीं। इस के आगे, जैसा कि मैं आप से पहले ही अर्ज़ कर चुका हूँ, कोई दो-तीन मिनट बाद ही राजेन्द्र ने बदहवासी की हालत में दरवाज़ा खोल दिया था और सामने खड़ी भीड़ को देख कुछ थरते-से स्वर में स्वीकार किया था, “मैंने वीरेश्वर को जान से मार डाला है। मुझे गिरफ्तार कर लो.....”

लाइट रोमांस

चेतन कुछ लुब्ध था। लुब्ध होने का कारण भी था। वह अभी-अभी सम्पादक महोदय से मिल कर आ रहा था जिन्होंने उस की हाल ही में प्रकाशित एक कहानी के सम्बन्ध में बात करते हुए कहा था, “देखिये, हम ने आप की कहानी छाप दी है, वह और बात है। लेकिन आप ज़रा सोचिये कि आज के जीवन में क्या कम मलिनता, कटुता और कर्कशता है जो आप लेखक-गण ऐसी निर्दय, हृदयहीन व मन दुःखी करने वाली रचनायें लिखते हैं? एक व्यक्ति अपने सगे दोस्त की हत्या कर डाले !....बताइये, कितनी क्रूर कहानी है !.... साधारण पाठक जो महज मनोरंजन के लिए ही पत्र-पत्रिकायें पढ़ते हैं, ऐसी कहानी कैसे पसंद कर सकते हैं? भले ही वह कितनी अच्छी तरह क्यों न लिखी गयी हो !....ये कहानी तो हम ने छाप दी, लेकिन भविष्य के लिए कोई हलकी-फुलकी और मनोरंजक-सी, जिसे पढ़

कुहासा और किरण]

लोग आपकी पिछली कहानी का बद-जायका भूल जायें.....” तथा चेतन को कुछ बुरा-सा मुँह बनाते देख, वह बात वहीं छोड़, अपने पचास वर्ष के जीवन-अनुभव को काम में लाते हुए बोलते थे, “चेतन जी, आप पे क्यों भूल जाते हैं कि हमारा पत्र लड़कियाँ और स्त्रियों भी पढ़ती हैं; और वे लोग इस तरह की रचनायें पसंद नहीं करती। आप को उन की पसंद के लिए भी तो कुछ लिखना चाहिये। माना कि ये आप की लाइन नहीं है, लेकिन तब भी.....प्रतिभावान लेखक तो वह है जिस ने सब तरह की चीज़ें लिखी हों—यानी जिस की रचनाओं में बेरायटी हो। आप अब समझ गये होंगे। तो अब आप शोषण, हत्या या दुःख-दारिद्र्य की कहानी के बजाय एक बढ़िया-सी मनोरंजक कहानी लिखें। कोई हर्ज नहीं, यदि उस में रोमांस हो—लेकिन हो लाइट जिसे सब पढ़ सकें, सब जगह पढ़ सकें—घर, बाहर—और जिस से सब का मनोरंजन हो सके। आप समझ गये न.....”

चेतन बाहर से चुप, किंतु अंदर से उबलता हुआ, कमरे के बाहर आया। वह सोच रहा था, जब मानव जीवन में ही इन हृदयहीन घटनाओं का समावेश हो गया है तो साहित्य इन घटनाओं से कैसे बचाया जा सकता है ?.....लेकिन तभी उसे मध्यवर्गीय क्लर्कों, स्कूल-मास्टर्स और टाइपिस्टों के बजाय, फरफराती साड़ियों और स्नो व सेंट की मादक गंध का ध्यान आ गया, जो [कदाचित्] उस की लिखी कहानी को सुसज्जित ड्राइंग-रूमों में और गुदगुदे सोफों पर अधलेटी पड़े। इस बार उसे ऐसी कहानी लिखनी है जो ये लोग भी पढ़ सकें। दक्कौल रामभादक जी के शब्दों में ‘कोई हर्ज नहीं यदि उस में रोमांस हो, लेकिन हो लाइट.....’ जिस के पढ़ने पर पाठक वर्ग के मन में कुछ मद्धम-मद्धम-सी गुदगुदी होने लगे तथा उनका चेहरा देख ऐसा प्रतीत हो कि अब हँसे और अब हँसे.....

बहरहाल । चेतन ने तय किया कि वह एक लाइट रोमांस की कहानी लिखेगा । और भी कुछ नहीं तो इस से उस की रचनाओं में एक बेरायती तो हो जायेगी ! और 'प्रतिभाशाली लेखक वह है जिस ने सब तरह की.....' उसे सम्पादक महोदय का कथन फिर याद आ गया ।

घर पहुँच वह कागज़ क्लम खींच कहानी लिखने बैठ गया । कहानी का शीर्षक उस ने 'लाइट रोमांस' रखा । कहानी इस प्रकार थी—

“रमाकांत को अचानक ही रोमांस करने की सूझ गयी ।

घर से जब वह चला था तो वह बिल्कुल नार्मल था और उस का इस किस्म का कोई इरादा न था । प्रति दिन वह अपने घर से बाहर जाया करता था—युनिवर्सिटी, कनॉट प्लेस, सिनेमा, बाज़ार, सभी जगह—और उसी प्रकार शांत भाव से घर लौट आया करता था । यहाँ तक कि उस की उमर भी पच्चीस वर्ष हो गयी थी । गोज़ बस में बस-स्टॉप पर, युनिवर्सिटी में, लाइब्रेरी में या सिनेमा की लॉबी में उसे युवा लड़कियों के दर्शन हुआ करते थे । लेकिन यह एक साधारण बात थी । रमाकांत उन्हें कुछ सूप्रियाना अंदाज़ से देखता था; जिन से प्रभावित होता था, उन के व्यक्तित्व को मन ही मन सराहता था और उस चेहरे के ओझल हो जाने पर उसे भूल जाता था । कोई विपैली छाप उस के हृदय पर न रह पाती थी । दिल में ख़ामख़्वाह कोई दर्द बसाया जाय, ये मूर्खता उसे कुछ अधिक प्रभावित न कर पाती थी । अपने इस सद्गुण पर उसे कुछ गर्व भी था; क्योंकि प्रायः अपने साथियों को आहें भरते देख, या 'तेरी दुनिया में दिल लगता नहीं' गुनगुनाते देख उस के चेहरे पर मुस्कराहट आ जाया करती थी,

कुहासा और किरण]

जो इस भाव की सूचक थी कि—‘मैया, हम मज़े में हैं ! देखते सब को हैं, लेकिन रोमांस किसी से नहीं भिड़ते ।’

तो उस दिन भी वह अपने प्रति दिन के मूड में ही था । सुबह से अब तक उसे दो-चार चेहरे अनायास ही देखने को मिल गये थे, जिन से वह लगभग ‘नहीं’ के बराबर ही प्रभावित हो पाया था । इस कारण वह बस में अपनी सीट पर निर्विकार भाव से बैठा हुआ था । अचानक ही अपने निकट किसी साड़ी की सरसराहट सुन उस ने दृष्टि उठा ऊपर देखा । देखते ही वह धक्के से रह गया । एक युवती कॉलेज-फाइल हाथ में लिये उस के निकट खड़ी थी । अत्यंत तत्परता से रमाकांत उठ खड़ा हुआ और खाली सीट के पास ऊपर की रॉड पकड़ खड़ा हो गया । युवती ने मुस्करा कर अस्फुट स्वर में थैंक्स कहा और सीट पर बैठ गयी । रमाकांत उस मुस्कराहट पर निहाल हो उठा । युवती सचमुच ही सुंदर थी और उस की माथे की बिंदी तो जैसे उस को सुंदरता में चार चाँद जड़ रही थी । जब तक बस युनिवर्सिटी न पहुँच गयी रमाकांत उसी तरह खड़ा हुआ असम्भ्यतापूर्वक युवती के चंद्र-मुख को निहारता रहा । और तभी रमाकांत को सूझा कि अब रोमांस का अबसर उस के जीवन में आ गया है । और उसे रोमांस करना आरम्भ कर देना चाहिये ।

इस प्रकार रोमांस की शुरुआत हुई ।

दिन भर रमाकांत कुछ परेशान-सा रहा । उस के मित्र कैलाश से उस की यह परेशानी छिपी न रही । बहुत आश्चर्य के साथ उस ने रमाकांत से सब बातें सुनीं और तब बहुत गम्भीरता से कहा कि रमाकांत उसे लड़की दिखा भर दे, बाकी सब सूचना और ज्ञातव्य बातें वह

रमाकांत को बता देगा और जहाँ तक हो सकेगा इस रोमांस में उस की पूरी-पूरी मदद करेगा । अंधा क्या चाहे ? दो आँखें ! रमाकांत इशारे द्वारा दूर से लड़की दिखाने को तैयार हो गया ।

दो दिन के असफल प्रयासों के पश्चात् तीसरे दिन रमाकांत कैलाश को युनिवर्सिटी में वह छवि दिखलाने में सफल हो ही गया । देखते ही कैलाश कुछ चौंक पड़ा और बोला, “अच्छा, इन पर आप का मन आया है ! बेरी गुड !..... भाई जान, भगवान ही मालिक है आप का !”

“क्यों क्यों ?” रमाकांत ने कुछ घबरा कर पूछा, “क्या बात है ! कौन हैं ये ?”

“अरे, ये तो बहुत अच्छी आर्टिस्ट है । तुम ने नाम भी सुना होगा इस का—कुमुद.....कुमुद अहूजा । रेडियो पर ड्रामों आदि में हिस्सा लेती है । बहुत अच्छे घर की लड़की है ।”

“खुद भी तो बहुत अच्छी है” रमाकांत कुछ प्रसन्न हो कर बोला । कुमुद की प्रशंसा से उसे प्रसन्नता हुई थी ।

“अब तुम जानो,” कैलाश ने निर्विकार भाव से कहा, “हम ने इतना तो तुम्हें बतला दिया । कहो तो घर का पता भी बता दें ।”

रमाकांत के मुस्करा कर सिर हिलाने पर उस ने कुमुद के घर का पता भी बता दिया ।

इस प्रकार रोमांस की जड़ें फूटनी आरम्भ हुईं ।

रमाकांत हालाँकि युनिवर्सिटी छोड़ चुका था, लेकिन इस रोमांस के कारण अब हर दूसरे-तीसरे दिन वह युनिवर्सिटी का चक्कर लगाने लगा । युनिवर्सिटी कॉफी-हाउस में कुमुद अक्सर अपनी सहेलियों के

कुहासा और किरण]

साथ ऑफ़ पीरियड्स में बैठी हुई उसे दीख जाया करती थी। और रमाकांत वहाँ बैठ उसे देख कर अपनी तृष्णा का शमन कर लिया करता था। जिस दिन उसे कुमुद के दर्शन हो जाते उस दिन वह युनिवर्सिटी से इस तरह लौटता जिस तरह कोई पीने वाला 'बार' से तृप्त हो कर लौटे।

रेडियो पर जिन ड्रामों में कुमुद पार्ट करती थी, रमाकांत उन्हें सुनने से नहीं चूकता था। अक्सर वह कुमुद के बोले संवादों को डायरी में नोट कर लिया करता और कॉफी-हाउस में कुमुद के सामने वाली टेबल पर बैठा उन्हें जोर से पढ़ा करता। ऐसे अवसरों पर कुमुद की सहेलियाँ अपनी कोहनी से कुमुद का टोहका देतीं और कुमुद फ़ाहल की आड़ कर हँसने लगती। उस की बड़ी बिंदी तब तेज़ी से दमकने लगती और रमाकांत कि इच्छा होती कि कुमुद के बहुत निकट चला जाय.....

एक बार रेडियो से 'वर्षा मंगल' नाटक प्रसारित हो रहा था। कुमुद का एक संवाद बोलना था, "आओ सखी, बाग़ में चलें और तोड़-तोड़ कर निंबोलियाँ खायें।" घबराहट में (जो माइक्रोफ़ोन के सामने प्रायः हो ही जाती है) कुमुद के मुँह से निकला, "आओ सखी, बाग़ में चलें और तोड़-तोड़ कर निमोनियाँ खायें।" रमाकांत ये संवाद सुनते ही फड़क उठा। तत्काल उस ने अपनी डायरी में यह संवाद नोट कर लिया। दूसरे दिन अपने चंद मित्रों के साथ (जो उस के इस रोमांस में बड़ी दिलचस्पी ले रहे थे) कॉफी-हाउस में बैठे हुए उस ने सामने की टेबल पर, अपनी सहेलियों के साथ बैठी कुमुद को सुनाते हुए जोर से कहा, "आओ सखा, बाग़ में चलें और तोड़-तोड़ कर निमोनियाँ खायें।" दोस्तों ने जोर का ठहाका लगाया। कुमुद का चेहरा लज्जा से लाल हो उठा। उस की सहेलियाँ भी मुस्करा रही थीं।

कुढ़ कर कुमुद ने सिर नीचा कर लिया । रमाकांत ने फिर अपने दोस्तों से कहा, “यार, बड़े बेशर्म हो । कहने पर भी नहीं चलते । चला न बाग़ में । वहाँ तोड़-तोड़ कर निमोनियाँ खायेंगे ।” और अपने खिलखिलाते दाँतों को साथ ले वह बाहर निकल गया ।

रमाकांत का ख्याल था कि ये सब चोचले तो रोमांस के दौरान में दो प्रेमी हृदय किया हो करते हैं । इन बातों का कोई बुरा नहीं माना करता । किंतु वास्तव में बात उल्टी थी । कुमुद रमाकांत की इस असभ्यता से बहुत नाराज़ थी । रमाकांत की पिछली हरकतों को तो उस ने यह सोच टाल दिया था कि ‘हज़रत अपने आप समझ जायेंगे और इस तरह पीछे-पीछे फिरना, घूरना और जुमले कसना बंद कर देंगे ।’ लेकिन अब उसे लगा कि ये महाशय तो सीमा का उल्लंघन करते जा रहे हैं । इन्हें यहाँ पर रुक देना उचित होगा, नहीं तो आगे चल कर मुसीबत आ ग्वड़ी होगी । वह रमाकांत को चेता देने के लिए कोई अवसर ढूँढने लगी । और एक दिन उचित अवसर उसे मिल भी गया ।

वह अपनी एक सहेली के साथ शॉपिंग करने (या खुदा जाने क्या करने) कर्नाट प्लेस गयी हुई थी । एक दूकान से वह बाहर निकली ही थी कि उस ने देखा, रमाकांत साहब भी अपने एक साथी के साथ फुटपाथ पर मौजूद हैं । रमाकांत की अनदेखी कर कुमुद अपनी सहेली के साथ आगे बढ़ गयी । रमाकांत अपने मित्र को वहीं छोड़ पीछे-पीछे हाँ लिया । एक दूकान के रौशन कॉरीडोर में कुमुद खड़ी हो गयी और इस मुद्रा से शो-विंडो की ओर देखने लगी जैसे कोई चीज़ पसंद कर रही हो । रमाकांत भी थोड़ी दूर पर रुक गया और शो-विंडो की ओर देखने का बहाना कर खड़ा हो गया, हालाँकि वह देख कुमुद को रहा था । कुमुद कनखियों से उस की सब हरकत देख रही थी । कुमुद को अपनी ओर देखता पा कर रमाकांत की शरारत जैसे भड़क उठी । सहसा उस

कुहासा और किरण]

ने अपनी बायीं आँख दबा कर कुमुद की ओर एक संकेत किया । इतने बड़े साहस के कारण उस के माथे पर पसीना छलक आया ।

कुमुद बौखला उठी । उसे लगा, इन हज़रत को सावधान करने का उपयुक्त अवसर यही है । ज़रा आगे बढ़ उस ने रमाकांत से कहा, “मिस्टर, सुनिये ज़रा ।”

रमाकांत घबरा गया । उस के ओंठ सूख गये । उसे लगा कि आज पिटाई निश्चित है । कॉरीडोर में इधर-उधर देख, दो-एक क्षण अनिश्चय की अवस्था में खड़ा रह वह साहस कर आगे बढ़ा । सोचने लगा कि ‘देखा जायगा जो कुछ भी होता है ।’ कुमुद के निकट आ कर वह खड़ा हो गया ।

कुमुद ने सिर से पैर तक उसे देख फटकारते हुए कहा, “बड़े शर्म की बात है । आप युनिवर्सिटी में हैं और ऐसी हरकतें करते हैं ।”

रमाकांत में अचानक साहस व आत्म-विश्वास जाग उठा । अत्यंत शांतिपूर्वक वह बोला, “जी, मैं युनिवर्सिटी में तो नहीं हूँ ।”

कुमुद जल कर बोली, “आप भूठ भी बोलते हैं । आप युनिवर्सिटी में हैं और कहते हैं कि मैं युनिवर्सिटी में नहीं हूँ ।”

रमाकांत ने उसी प्रकार शांतिपूर्वक कहा, “जी, मैं सच कह रहा हूँ । मैं अब युनिवर्सिटी में नहीं हूँ । इस एप्रिल में मैं एम. एस. सी. कर चुका हूँ ।”

कुमुद इस सत्य से कुछ निरुत्तर-सी हो गयी । एकदम दूसरी बात उठाते हुए वह बोली, “ग़ैर न सही ! आप ये बताइये । अभी-अभी जो आप ने आँख से मेरी तरफ इशारा किया था, भला इस सब से आप को क्या मिलता है ?”

रमाकांत ने अत्यंत सौम्यतापूर्वक उत्तर दिया, “जी, इस से मेरे मन को शांति प्राप्त होती है ।”

मन में क्रोध होने पर भी कुमुद के चेहरे पर मुस्कराहट आ गयी । अपने को तत्काल निरुत्तर-सी पाती हुई वह बोली, “अच्छा देखिये, आप अब युनिवर्सिटी कॉफी-हाउस में आना और मेरी टेबल के सामने बैठना बंद कर दीजिये ।”

बिना डगमगाये हुए रमाकांत ने कहा, “आप भी कॉफी-हाउस में आना बंद कर दीजिये । मैं कसम खाता हूँ, मैं भी वहाँ कदम तक न रखूँगा ।”

चौंक कर कुमुद ने कहा, “वाह ! ये कैसे हो सकता है ? मेरी फ्रैंड्स मुझे मजबूर करती हैं और मुझे आना ही पड़ता है ।”

रमाकांत बोला, “मुझे भी मेरे फ्रैंड्स ज़बरदस्ती घसीट लाते हैं । मुझे आना ही पड़ता है ।”

कुमुद जैसे बिल्कुल परास्त हो कर बोली, “देखिये, मैं आप के हाथ जोड़ती हूँ । आप इस तरह मेरे पीछे-पीछे घूमना, रेडियो-नाटकों के मेरे डायलाग दोहराना और मुझे लगातार ताकते रहना छोड़ दीजिये । मेरी बहुत हँसी हो रही है । मेरी सब फ्रैंड्स मेरा मज़ाक उड़ाती हैं ।” फिर जैसे बहुत बेज़ार हो कर बोली, “और आखिर इस से आप को मिलता ही क्या है ?”

रमाकांत ने उसी प्रकार उत्तर दिया, “जी, मैं कह चुका हूँ न, इस से मेरे मन को शांति प्राप्त होती है । आप मेरी शांति का कोई दूसरा प्रबंध कर दीजिये । मैं ये सब छोड़ दूँगा ।”

कुमुद गहरे सोच में पड़ गयी । उसे लगा वह उलझन में फँस गयी है । अपनी जान छुड़ाने के लिए सचमुच कुछ न कुछ अवश्य करना पड़ेगा । एक मिनट चुप रह वह बोली, “अच्छा, आप की शांति का दूसरा प्रबंध हो जायगा । मगर आप ये पीछे-पीछे घूमना और इशारे करना छोड़ दीजिये ।”

कुहासा और किरण]

“मंजूर”, रमाकांत ने प्रसन्न भाव से कहा, “लेकिन क्या मैं जान सकता हूँ कि आप मेरी मानसिक शांति के लिए कौन-सा प्रबंध करेंगी ?”

कुछ सोचते हुए कुमुद ने उत्तर दिया, “एक फोटो से काम चल जायेगा न !”

सोचते ही हुए रमाकांत ने उत्तर दिया, “हाँ, चल जायगा ।”

चौथे दिन बुक-पोस्ट द्वारा रमाकांत को कुमुद का ‘लिसनर’ में छपा एक फोटो मिल गया । यह फोटो उस समय का था जब कुमुद अहूजा ‘बच्चों के कार्यक्रम’ में भाग लिया करती थी ।

रमाकांत तिलमिला कर रह गया । उस के मन में आया, तत्क्षण कुमुद से मिले और उस से इस चतुराई का अच्छी तरह बदला ले । किंतु वह यह मोच रुक गया कि उस गत कनॉट प्लेन में वह कुमुद से भविष्य में जान बूझ कर कभी न मिलने का वायदा कर चुका है । उसे तभी कुमुद का चलते समय कहा हुआ वाक्य भी याद आ गया, ‘सज्जन व्यक्ति अपना वचन कभी नहीं भूलते—कभी भी । और मुझे विश्वास है कि आप सज्जन व्यक्ति हैं !’

ऑफ़ कोर्स ! रमाकांत सज्जन व्यक्ति है । वह अपना वचन कभी नहीं भूलता । माना, कुमुद ने उस से छल किया है, लेकिन उस से क्या ? वह स्वयं जान-बूझ कर अब कुमुद अहूजा से कभी न मिलेगा ।

और फिर जैसे उस ने अपने आप को ही समझाने के लिए सोचा—आखिर वह कुमुद अहूजा से प्रेम थोड़े ही करता था ! वह तो महज़ रोमांस करता था । और रोमांस का मजा इसी में है कि वह थोड़े समय

बाद ख़तम हो जाय, प्रेम में डेवलप न हो । क्योंकि ऐसा हो जाने पर मनुष्य दूसरा रोमांस करने योग्य नहीं रहता । और यह कितनी बड़ी ट्रेजेडी है कि मनुष्य जीवन में केवल एक ही बार रोमांस करे ! वास्तव में जीवन तो रोमांसों से भरपूर होना चाहिये— एक दो नहीं, पचासों-सैकड़ों रोमांसों से.....और अचानक उसे इस बात की प्रसन्नता हुई कि वह अब फिर स्वतंत्र हो गया है; और नया रोमांस करने के लिए बिल्कुल फ़्री है । पहला रोमांस उम्र भर का रोग बन उस के गले में लटक नहीं गया है, इस के लिए उस ने ईश्वर को बहुत-बहुत धन्यवाद दिया ।

उस रात उसे बहुत अच्छी नींद आयी ।

इस तरह लाइट रोमांस की समाप्ति हुई ।”

कहानी समाप्त कर, बिना पढ़े चेतन ने उसे सम्पादक जी के पास भेज दिया । पता नहीं, सम्पादक जी उस कहानी के विषय में क्या सोचते हैं ?....चेतन को कुछ मालूम नहीं है । फ़िलहाल तो वह सम्पादक जी और साथ ही अपने कृपालु पाठकों के निर्णय की प्रतीक्षा कर रहा है ।

मीमांसा

सिर भुकाये विनय बोला, “भाई छोड़ो यह बात। मैं ने इस तरह की मीमांसायें करनी छोड़ दी हैं। मेरे ख्याल से ये फिजूल हैं। हम कभी अंदाज़ नहीं कर सकते कि जिस प्राणी के नरचे को ले कर हम परेशान हो रहे हैं, उस ने किन परिस्थितियों में, या किन आदर्श-वादी भावनाओं के आधीन हो कर वह कृत्य किया, जिस ने हमें—यानी समाज को—एक शॉक [आघात] दिया; और हमें, जिन्हें अपने धंधों से फुरसत नहीं मिलती, उस प्राणी व उस के आचरण के ऊपर एक लम्बी डिबेट करने का ‘सुअवसर’ दिलवा दिया! मनुष्य-मन बड़ा विचित्र है, और आप या हम कभी उस की तह तक नहीं पहुँच सकते; चाहे हम लाख अपने को धुरंधर लेखक, प्रगाढ़ विद्वान और गूढ़ मनोवेत्ता समझते रहें !”

नरेश के बदन पर जैसे चींटी-सी रेंग गयी। तिलमिला कर

बोला, “विनय साहब, आप चीजों को ज़रा आदर्शवादी चश्मे से देखने के आदी हैं। यही कारण है कि किसी प्राणी के—और वह भी स्त्री के—एक शॉकिंग [आघात देने वाले] आचरण की पृष्ठभूमि में आप आदर्शवादी भावनाओं को रख रहे हैं....” फिर हम सब लोगों की ओर एक सरकती दृष्टि फेंक वह आगे बोलता गया, “ज़रा आप सोचिये, एक स्त्री का ऐसा आचरण या कृत्य, जिस के विषय में सुन हमें आघात पहुँचता है, क्या किसी पवित्र व आदर्शवादी भावनाओं के अधीन हो कर किया जा सकता है? और क्या उस घृणित व तिरस्कार-योग्य आचरण को उस स्त्री ने निर्विकार मन से किया होगा? क्या उस आचरण के पश्चात् भी वह स्त्री निष्पात-निष्कलंक मान कर देवी-पद पर विभूषित की जा सकती है और समाज के लिए अव्वल किरिसिज़्म [आलोचना से परे] मान ली जा सकती है?...आप बतलाइये।”

हम सब खामोश थे। हालाँकि ये प्रश्न हमारी ही शकलों से किये गये थे, लेकिन हम जानते थे कि हमें इन का उत्तर नहीं देना है। ये प्रश्न विनय के लिए हैं, और वही इन का उत्तर देगा।

और हुआ भी वही। तीन-चार क्षण की खामोशी के बाद विनय ने उसी आहिस्ता टोन में बोलना शुरू किया। उस के बोलने के दंग से लग रहा था कि इस चरचे से उसे दुःख हो रहा है और वह महज़ किसी कर्त्तव्य का पालन करने के लिए ही इस बहस में हिस्सा ले रहा है। विनय नरेश को लक्ष्य कर कह रहा था, “मैं जानता था मिस्टर नरेश, आप मेरी बात का प्रतिवाद अवश्य करेंगे। आप प्रतिवाद करने के लिए मजबूर हैं, यह भी मैं जानता हूँ। यह आप की ज़्यादती है, या आप का अविवेक है—ऐसा मैं नहीं कहता; क्योंकि मैं जानता हूँ कि ज़्यादती या अविवेक जो भी है वह समाज और उस की प्रचलित

कुहासा और किरण]

धारणाओं का है जिस ने आँखें मूँद फ़तवा दे रखा है कि किसी भी प्राणी—विशेष रूप से स्त्री—के तिरस्कार-योग्य आचरण करने का उद्देश्य असत् के अतिरिक्त कुछ नहीं हो सकता.....मैं कहता हूँ, हो सकता है। किसी प्राणी के तिरस्कार-योग्य आचरण की पृष्ठभूमि में वह सब भी हो सकता है जिसे आप अपने समूचे तर्क के साथ असत् नहीं कह सकते। तब वह क्या हो सकता है, इसे कदाचित् हम जीवन भर नहीं समझ सकते—कम से कम मैं तो अपने लेखकपने के बावजूद अब तक नहीं समझ सका हूँ.....” विनय कुछ रुका, फिर नयी सॉस ले कर हम सब की ओर दृष्टि डाल कर बोला, “देखिये, मैं आप को एक घटना सुनाता हूँ, जिस का एक पात्र मैं सहसा ही बन गया था। आप पूरी बात सुनिये और तब एक सही व बेलाग फैसला दीजिये। मगर ख्याल रखियेगा कि फैसला देते समय आप महज़ मानव होंगे—अपनी सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक स्थिति से बिल्कुल अलग—महज़ इंसान, और कुछ नहीं.....”

हम सब सम्हल कर बैठ गये। इतनी लम्बी भूमिका के बाद वही जाने वाली बात ने हमारे कुतूहल को जगा दिया था।

विनय ने कहना शुरू किया, “बात कोई तीन साल पहले की है जब मैं विश्वविद्यालय का विद्यार्थी था। गर्मियों की छुट्टी में मैं अपने ननसाल देहरादून गया हुआ था। ऐसे ही निष्प्रयोजन घूमते हुए एक दिन माटर-स्टैंड पर अपने वचन के एक दोस्त अल्ताफ़ से मेरी भेंट हो गयी। अल्ताफ़ आठवीं क्लास तक मेरे साथ पढ़ा था। फेल हो कर उस ने पढ़ना छोड़ दिया था और एक मोटर-वर्कशॉप में मिस्त्री का काम सीखने लग गया था। मैं ने पढ़ना जारी रखा था। इस लम्बे अरसे में मैं विश्वविद्यालय में पहुँच गया था और अल्ताफ़ टेक्सी-

ड्राइवर बन गया था, जिस की अपनी निजी दो-एक गाड़ियाँ थीं। वह मुसाफ़िरो को देहरादून से मसूरी ले जाया करता था।

खैर, मिल कर हम दोनों का बहुत खुशी हुई। बचपन की बातें शुरू हो गयीं। विदा होते समय यह तय हुआ कि दूसरी शाम हम फिर मिलेंगे। और फिर तो इन भेंटों का ऐसा तौता बँधा कि मैं हर शाम मोटर-स्टैंड जाने लगा। मुझे और तो कोई शगल था नहीं। दिन भर पढ़ने व सोने के बाद मैं शाम को मोटर-स्टैंड पर अल्ताफ़ से गपशप लड़ा कर अपने को तरो-ताज़ा कर आता था।

ऐसी ही एक शाम की बात है। रोज़ की तरह मैं स्टैंड पर पहुँचा। सो कर आ रहा था, इस कारण बाल भी उलभे-सुलभे थे और कपड़े भी बासी-से लग रहे थे। देखा कि अल्ताफ़ दो सूटेड-बूटेड नवयुवकों से उलभ रहा है। नवयुवकों के साथ हलका-सा सामान था—एक सूटकेस और एक बिस्तर। पास ही एक सुंदरी युवती खड़ी थी जिस के चेहरे पर घबराहट के भाव स्पष्ट थे, किंतु जिन से वह और भी अधिक सुंदरी प्रतीत हो रही थी। उस की दृष्टि एक जगह टिकी हुई नहीं थी। वह बार-बार इधर-उधर देख रही थी।

थोड़ी देर में सहमत-सा होता दीखता अल्ताफ़ मेरी ओर मुड़ा। मैं ने धीरे से पूछा कि बात क्या है? अल्ताफ़ बोला, “साले लोफ़र मालूम पड़ते हैं। मसूरी जाने को कह रहे हैं।”

मैं ने पूछा, “मसूरी जाने को कहने से ये लोफ़र किस तरह हो गये?”

अल्ताफ़ कुछ तेज़ी से बोला, “देखते नहीं, साथ में लड़की ला रक्खी है!”

“यह लड़की उन की बहन या बीबी हो सकती है!”

कुहासा और किरण]

“वाह रे दिमाग !” अल्ताफ़ मुस्कराया, “ये लोग पंजाबी हैं, और लड़की यहा की मालूम पड़ रही है।”

जरा चुप रह कर मैं ने प्रश्न किया, “तो ?”

“तो क्या ?” अल्ताफ़ ने कहा, “इस आखिरी गेट से मंसूरी ले जा रहा हूँ। पैतीस रुपये पर बात तय हो गयी है।”

मैं ने उन नवयुवकों की ओर देखा। वे दोनों अश्लील ढंग से हँस रहे थे। लड़की सकुचाई हुई एक ओर खड़ी मानो सड़क की भोंड़ में किसी को ढूँढ़ रही था।

संवेदनशील मैं बहुत हूँ.....उस लड़की की घबराहट ने मेरे मन में उथल-पुथल कर दी।

सहसा मैं ने अल्ताफ़ से कहा, “दोस्त एक बात कहूँ जो तुम मानो। आज मुझे ले जाने दा गाड़ी मसूरी। मैं इन लोगों के साथ जाना चाहता हूँ। देखता हूँ, तुम्हारा खयाल कहाँ तक सही है।”

अल्ताफ़ मेरे लेखन से अच्छी तरह परिचित है। मुस्कराते हुए बोला, “आ गयी लड़की पसंद इतनी देर में ? अब अफ़साना लिखना चाहते होंगे इस पर ! अच्छा, तो ठीक है। तुम्हीं ले जाओ इन्हें। मुझे कोई खास दिलचस्पी नहीं है.....लेकिन हाँ, ड्राइव कर लोगे ?”

“आफ़ कोर्स ! तुम चिंता न करो।” मैं ने उत्तर दिया।

“बस तो फिर तुम्हीं ले जाओ।” अल्ताफ़ बोला।

प्रसन्नता की एक लहर मेरे चेहरे पर दौड़ गयी।

इसी समय एक बूढ़ा-सा आदमी वहाँ आ गया। दोनों युवक उस से बात करने लगे।

अल्ताफ़ ने उन लोगों से कहा, “आप लोग बैठ जाइये फिर। अब चलते हैं। सामान भी रखवा दीजिये।”

सामान रख वे लोग गाड़ी में बैठ गये। वह बूढ़ा भी बैठ गया।

बोला, “मैं कुठ्यालगौंव उतर जाऊंगा। वहाँ से राजपुर होता चला जाऊंगा।” [मसूरी की नई मोटर-सड़क राजपुर होती हुई नहीं जाती है।]

मुझे स्टियरिंग पकड़ते देख एक नवयुवक अल्ताफ़ से बोला, “क्यों उस्ताद, तुम्हारी नहीं है यह गाड़ी ? तुम क्यों नहीं ले जा रहे हो ?”

अल्ताफ़ ने जवाब दिया, “गाड़ी तो यह मेरी ही है। यह मेरा ड्राइवर है। चलता तो आपके साथ मैं ही; लेकिन मैं अपनी दूसरी गाड़ी की इंतज़ार में हूँ। वह सहारनपुर से आने वाली है। मेरे घर के लोग आ रहे हैं उस गाड़ी से। इस कारण मजबूरी है।”

वे संतुष्ट से दीखे।

अल्ताफ़ के हाथ का इशारा पा मैं ने गाड़ी आगे बढ़ायी।

कुठ्यालगौंव गेट पर पहुँच कर मैं ने गाड़ी एक ओर खड़ी कर दी। गेट खुलने में अभी देर थी। मैं गाड़ी से उतरा। वह बूढ़ा भी गाड़ी से उतरा। वे तीनों बात करते-करते थोड़ी दूर निकल गये, और सड़क के किनारे जमाये हुए चूने-पुते पत्थरों पर बैठ बातें करने लगे। मैं पास को दूकान पर पड़ी बेंच पर बैठ गया। नवयुवती कार में अकेली बैठी रही।

गेट खुलने में पाँच मिनट रहने पर मैं उन लोगों को गाड़ी में बैठ जाने के लिए कहने उन के पास गया। देखा—वे दोनों नवयुवक सामने रखे अंग्रेज़ी शराब के एक अढ़े में से पी रहे हैं। बूढ़ा ओठों पर जीभ फेर रहा है। मुझे देख कर एक ने पूछा, “क्या बात है ?”

मैं ने बतलाया, गेट खुलने वाला है। आप लोग गाड़ी में बैठ

कुहासा और किरण]

जायँ । वह अपने साथी की ओर देख मुक्त से बोला, “तुम चलो । हम आते हैं ।”

सही बात क्या है, मैं समझने की कोशिश कर रहा था; किंतु उनके सम्बन्ध की मेरी कोई भी धारणा अभी तक पुष्ट नहीं हुई थी ।

उन के पास से आ कर मैं गाड़ी में बैठ गया । युवती मेरी ओर देखने लगी, लेकिन जैसे मैं ने उस की ओर देखा उस ने अपनी दृष्टि दूसरी ओर कर ली । मेरे चेहरे पर मुस्कराहट आ गयी ।

पीछे-पीछे वे लोग भी आ रहे थे । कार के पास आकर बूढ़ा बोला, “अच्छा तो साहब, मैं अब जाऊँगा ।”

युवकों में से एक बोला, “हाँ, तुम अब जाओ । परसों हम लौटेंगे । तब वहीं होटल में मिल लेना हम से ।”

बूढ़े ने फिर कहा, “अच्छा, ज़रा ब्रिटिया से पूछ लूँ । कुछ कहन तो नहीं है उसे ।”

“हाँ-हाँ, पूछ लो ।”

बूढ़ा कार की खिड़की के पास हो गया । लड़की ने बहुत धीरे से कहा, “तुम जा रहे हो मामा ।”

मैं बाहर की ओर इस तरह देखने लगा जैसे मेरे आस-पास कोई नहीं है । बूढ़े ने कहा, “हाँ, क्यों घर पर कुछ कहना तो नहीं है ?”

लड़की ने एक टंडी-सी सॉस लेकर कहा, “नहीं, कुछ नहीं । माँ को समझा देना कि मैं परसों तक आ जाऊँगी । और दीबू को मेरा प्यार कह देना । बस ।”

बूढ़ा खिड़की पर से हट गया और युवकों के निकट जा कर बोला, “साहब, मैं अब जाता हूँ ।” फिर कुछ रुक कर भिन्नकता-सा बोला, “जी, मिह्रबानी होगी । यह मुझे दे देते ।” उस का इशारा युवक की पैंट की जेब में पड़े अद्वे की ओर था ।

उस युवक ने हँसते हुए दूसरे युवक की ओर देखा । दूसरे युवक ने मुस्करा कर अंग्रेजी में कहा, “दे दो । इस शैतान से पिंड छूटे ।”

पहले युवक ने जेब से अद्दा निकाला और मुँह लगा कर खड़े ही डे गट-गट कर पीना शुरू कर दिया । जब उस में थोड़ी-सी रह गयी वह अद्दा उसने बूढ़े को दे दिया और कहा, “अब जाओ । ‘गो न । गौन.....गौन बिद् दू बिन्ड’ ।” और वेहूदा तौर से हँसने और हाथ से चले जाने का इशारा करने लगा ।

बूढ़े ने प्रसन्नमुख से वह चपटी-सी शीशी ली और मेरे गाड़ी स्टार्ट करने पर पीछे की ओर मुड़ गया ।

गाड़ी तब कोल्हूखेत टोल-बार के नीचे की कैचियों पर पहुँची थी कि उन दोनों युवकों की भद्दी हँसी सहसा तेज हो गयी । अभी तक मैं पीछे मुड़ कर नहीं देखा था—[अभाग्यवश उस गाड़ी में ड्राइवर सामने वाला रियर-ग्लास-मिरर भी नहीं था]—किंतु पिछली पेटों पर जो कुछ हो रहा था उस का अनुमान मैं गाड़ी ड्राइव करते-रते ही लगा रहा था । इस बार हँसी तेज होने पर, चौंक कर मैं ने छे की ओर देखा । उन दोनों युवकों के बीच वह युवती ऐसी लग रही थी जैसी दो हिंसक बाजों के बीच कोई भयभीता कबूतर । दोनों युवकों ने उस के गले में हाथ डाल रखे थे । अपनी किसी कुत्सित धृष्टा में सफल होने पर ही वे इस बुरी तौर पर हँस रहे थे । उस युवती के चेहरे पर जो भाव था—और अपनी इस शर्मनाक परिस्थिति को मेरे द्वारा भी देखे जाने पर उस के चेहरे पर जो भाव आ गये—कुछ

कुहासा और किरण]

घृणा के, कुछ विवशता के से और तब लज्जा, भेष व आत्म-ग्लानि के..... मेरी इच्छा हुई कि गाड़ी रोक कर उन दोनों दुष्टों की अच्छी तरह मरम्मत कर, उन्हें धक्का दे खड्ड में ढकेल दूँ ! शैतान कहीं के !.....

पीछे मुड़ कर मेरे देखने पर शायद उन्हें भी क्रोध हुआ। एक युवक कुछ कुपित स्वर में बोला, “ए खोत्ता (गधे !), पीछे क्या देखता है ? अपना काम कर ।” क्रोध मुझे भी इस बात पर आ गया, लेकिन अपनी परिस्थिति का विचार कर मैं खामोश ही रहा और निर्विकार भाव से ड्राइव करता रहा ।

कुछ समय के लिए उन की हँसी बंद हो गयी । गाड़ी में खामोशी छा गयी । लेकिन शाम के अंधेरे के फैलने के साथ ही उन की घृणित हँसी फिर जारी हो गयी—शायद पैशाचिक हरकतें भी । और मैं ने गाड़ी की रफ्तार तेज़ कर दी—काफ़ी तेज़, जिस से हम मसूरी जल्दी पहुँच जायें; और रास्ते की लम्बाई के कारण उस बेचारी युवती को उन दुष्टों की अधिक यातना न सहनी पड़े !.... [यह मैं भूल गया था कि उस बेचारी को तो परसों तक उन ‘देवदूतों’ के साथ निवास करना है ।]

मुझ से आगे तीन-चार गाड़ियाँ थीं, लेकिन मसूरी मोटर-स्टैंड पर जो गाड़ी पहले पहुँची वह मेरी थी ।

गाड़ी एक ओर पार्क कर मैं उन लोगों के पास आया और बोला, “आप लॉग शायद पहली बार आये हैं मसूरी । कहिये, मैं कुछ काम आ सकता हूँ आप के ?”

उन्होंने कुछ अचरज से मेरी ओर देखा । फिर एक बोला, “एक-दो रिकशे कर दो हमारे लिए ।”

मैं जानना चाहता था कि ये लोग जाते कहाँ हैं ? सो पूछा, “रिक्शे कहाँ तक के लिए किये जायँ ?”

उन्होंने एक होटल का नाम बतलाया । कहा, उस में एक कमरा रिजर्व है उन का !

मैं ने कुछ हँस कर कहा, “होटल ठीक नहीं चुना आप ने ! और तो कोई बात नहीं, लेकिन ज़रा बदनाम है । आप जैसे शरीफ़ व घर-बार वाले लोगों के लिए ठीक नहीं है ।”

दोनों युवक अचकचा कर मेरे मुँह की ओर देख, एक दूसरे को देखने लगे । फिर एक ने अंग्रेज़ी में दूसरे से कहा, “दू डैविल इज़ वेल-इन्फ़ार्मड (शैतान की अच्छी जानकारी है) ।”

मुझे हँसी आने को हुई । कठिनाई से मैं अपने को रोक पाया ।

एक ने मेरी बात का उत्तर दिया, “अब तो कमरा रिजर्व कर लिया है । दो-तीन दिन काटने हैं, काट देंगे । कौन सी उम्र बितानी है वहाँ !”

सुन कर मैं बोला, “ठीक है । मैं रिक्शे ले आता हूँ आप लोगों के लिए ।”

उन के लिए दो रिक्शे तय कर उन्हें मैं ने मोटर-स्टैंड से खाना किया । जाते समय मैं ने एक अचरजपूर्ण कार्य्य कर डाला । उन लोगों को बिदा-नमस्ते करते समय मैं ने उस युवती को भी नमस्ते कर दी । वह युवती सकते में आ गयी । मेरी नमस्ते का उत्तर तक न दे सकी । मुँह फाड़े मुझे देखती रह गयी । वे युवक इस चीज़ को न देख पाये ।

घंटा-एक के लगभग किन्क्रेग पर ही ठहर मैं भी उसी होटल में पहुँचा । वहाँ का मैनेजर मेरा परिचित निकला—[वह मेरा परिचित न भी होता तो भी कोई अंतर न पड़ता]—उस से मालूम हुआ वे

कुहासा और किरण]

दोनों युवक और युवती वहीं ठहरे हुए हैं। दोनों युवक कहीं बाहर गये हुए हैं। मैं ने यह अचानक ठीक समझा और कमरे का नम्बर मालूम कर उस ओर बढ़ा।

दरवाजा खटखटाते ही युवती ने दरवाजा खोल दिया। मुझे देख और पहचान कर, तथा वहाँ मुझे उपस्थित देख वह कुछ आश्चर्य-सी हो गयी। केवल बोल पायी, “आप !”

उस की घबरायी मुद्रा देख कर मैं ने कहा, “जी हाँ, मैं ही हूँ। आप घबराइये मत। मुझ से आप का कोई अनिष्ट न होगा।”

उसे कुछ विश्वास हुआ दीखा, लेकिन वह बोली कुछ नहीं।

मैं ने खड़े-खड़े ही कहा, “देखिये, समय बहुत कम है मैं आप से कुछ पूछना चाहता हूँ। आशा है आप बतलाने में कोई संकोच न करेंगी।”

बहुत सरल भाव से वह बोली, “पूछिये, क्या बात है ?”

“क्षमा कीजियेगा,” मैं ने कहा, “हैं तो यह मेरी अनाधिकार चेष्टा, लेकिन अपनी प्रकृति के कारण मजबूर हूँ। इन जैन्टलमैनों को देख कर मुझे कुछ संदेह होता है। ये भलेमानुस नहीं जान पड़ते। ये आप के सम्बन्धी भी नहीं जान पड़ते। फिर आप इन के साथ कैसे आयीं ? क्या ये लोग आप को जबरदस्ती या किसी जाल में फँसा कर अपने साथ लाये हैं ?”

मैं ने देखा, युवती का सुन्दर मुँह पीला पड़ गया। कुछ काँपते स्वर में वह बोली, “लेकिन आप यह सब क्यों जानना चाहते हैं ?”

मैं ने उत्तर दिया, “केवल इस कारण कि मैं इंसान हूँ। आप इस समय मुझीका में फँसी दीखती हैं। इंसानियत के नाते मेरा यह कर्तव्य हो जाता है कि मैं आप के कुछ काम आ सकूँ। और मैं समझता हूँ मुझ से मदद लेने में आप को किसी प्रकार का कोई संकोच

नहीं होना चाहिये । मैं अपने किसी निजी स्वार्थ के लिए सहायता का हाथ आगे नहीं बढ़ा रहा हूँ । मैं तो एक भाई के नाते अपनी सेवायें आप को दे रहा हूँ ।”

उस की आँखों में आँसू छलछलला आये । मुझे दुःख हुआ । मैं ने कहा, “यदि मेरी बात से आप को दुःख हो रहा है तो आप रहने दीजिये । मेरा इरादा आप को दुःख पहुँचाने का नहीं था । इस प्रकार के अनुचित प्रश्न करने के लिए मैं आप से क्षमा चाहता हूँ ।”

मेरी बात सुन कर उस ने अपने आँसू पोंछे । कुछ देर चुप रह अपने को संयत कर वह बोली, “नहीं, मुझे दुःख नहीं हुआ । आप की बातों के अनेकन से मैं अपने आँसू न रोक सकी थी । मैं ने नहीं सोचा था कि मुझ से कभी कोई निःस्वार्थ हमदर्दी जता सकता है—और वह भी भाई के नाते ।”

इसके बाद उस ने बहुत करुण ढंग से अपनी कहानी सुनायी— कहानी जो कि नयी नहीं थी । वह मध्यम श्रेणी के एक गृहस्थ की लड़की थी । पिता कई संतान छोड़ कर मर गये थे । ये चार-पाँच भाई-बहिन अपनी विधवा माँ के साथ अपने मामा के यहाँ रहते थे । पहले तो गुजारा जैसे-तैसे कर हो ही जाता था, लेकिन लड़ाई के बाद महंगाई बढ़ने के कारण मामा ने अपनी बड़ी भौंजी के बढ़ते दौबन और रूप को परिवार की आमदनी का साधन बनाने की चेष्टायें करनी प्रारम्भ कर दीं । शुरू में लड़की और लड़की की माँ दोनों को यह बात अत्यंत नागवार गुजरी । भाई (और मामा) से छिप-छिप कर वे दोनों रोयीं, किंतु प्रकट उस का विरोध न कर सकीं । विरोध अगर करती भी, तो जाती कहाँ ? ...पेट पर पट्टी बाँध कर तो वे लोग जी नहीं सकते थे !.... और फिर उन के साथ तो छोटे-छोटे बच्चे भी थे—अबोध और अज्ञान, जिन्हें दुनिया की इस क्रय-विक्रय का कुछ भी ज्ञान नहीं था.....और

कुहासा और किरण]

फिर संसार में क्रय-विक्रय तो लगा ही है । रोटि व भौतिक सुविधाओं के लिए प्रत्येक प्राणी अपने को बेचता है —उसे बेचना पड़ता है । कुछ अपने समय को बेचते हैं; कुछ अपने दिमाग को; कुछ अपनी मिहनत को; कुछ अपनी कला और दस्तकारी को; कुछ अपने धर्म-ईमान को; और कुछ अपने शरीर को.....और शायद ये ही सब से अभागे प्राणी होते हैं । वह भी अभागी थी, तभी तो अपने परिवार की जीविका के लिए उस बेचारी को इस वृणित व्यवसाय को बलात् अपनाना पड़ा । पहली बार किसी वृद्ध-से सेठ ने उस के रूप-यौवन का साँदा किया था; और आज दूसरी बार पंजाब के ये उच्छ्रिखल युवक उस के साथ खेलने के लिए उसे यहाँ—मसूरी—ले आये हैं, मामा की जेब अच्छी तरह गर्म कर....वह आँचल से मुँह ढाँप फूट-फूट कर रोने लगी ।

अपने प्रश्नों द्वारा उसे रलाने के कारण, मुझे अपने ऊपर बहुत खीज आयी । क्यों मैं ने यह सब पूछ कर उस के धावों को कुरेदा ?.... पुरुष होने पर भी मनुष्य की इस विवशता व असमर्थता पर मेरे आँसू आये बिना न रहे । संसार में हमें कितना लाचार बना कर भेजा गया है ! चाहने पर भी हम सीधा-सचाई का जीवन नहीं बिता सकते !.... हम अपने को कलुषता से दूर नहीं रख सकते !....अपनी ही तरह दुःखी और पीड़ित प्राणी की सहायता नहीं कर सकते !....अपनी समवेदना और सहानुभूति तक व्यक्त करने का अधिकार हमें नहीं है ।

मुझे रोते देख उस के आँसू रुकने लगे । एक फीकी मुस्कराहट चेहरे पर ला कर, अत्यंत समझदार व्यक्ति की भाँति वह बोली, “देखिये, मैं कितनी अभागी हूँ । अपनी इस बेकार की कहानी से आप को भी दुःखी कर दिया ।”

मैं ने कुछ भी उत्तर न दिया, चुप रहा ।

बहुत वेदनाजन्य स्वर में उस ने कहा, “मजबूरी सब कुछ करा

देती है। छोटे भाई-बहिनों और माँ के वास्ते ही यह सब करना पड़ रहा है।” फिर कुछ रुक कर कहा, “अगर मैं आप की तरह लड़का होती तो फौज में या नेवी में भरती हो जाती।”

सुन कर बहुत आघात पहुँचा। मैं ईश्वर की दुनिया के इस चलन को सोचने लगा—यह सब क्या हो रहा है?....क्यों हो रहा है?....और कब तक होता रहेगा?....यह भूख, यह रोटी-कपड़े की समस्या, गरीबों का पिंड क्या कभी न छोड़ेगी?....यह युवती जो आज अपने परिवार के रांटी-कपड़े के लिए अपने को बेचने को विवश है, यह क्यों?....क्या दुनिया से शराफ़त उठ गयी है? क्या गरीबी इस [और इस जैसे अनेक] परिवार पर अपना साया इसीलिए किये हुए है कि वह अपनी इज़्ज़त बेच-बेच कर अपना पेट भरे?....यह कैसा ईश्वरत्व है?....यदि ईश्वर अपनी सृष्टि को जीवित रखने में असमर्थ है तो वह इसे खतम क्यों नहीं कर देता? असहायों और दुखियों को इस तरह तिल-तिल भर जलाने में उसे क्या सुख मिल रहा है?....

मैं ने साहस कर कहा, “बहिन पाप का निस्तार पाप से ही होता है। काँटे को काँटे से ही निकाला जाता है। अगर अनुचित न समझो तो मुझ पर विश्वास कर इसी समय यहाँ से निकल चलो। माना, संसार में पैसा बहुत बड़ी चीज़ है, लेकिन इस पर भी यह अधिकार किसी भी व्यक्ति को नहीं है कि वह पैसे से एक दूसरे व्यक्ति की इज़्ज़त खरीदे। ये दोनों आदमी शैतान हैं और इसी योग्य हैं कि इन से शैतानियत ही बरती जाय। जितने ये लोग लौटते हैं उतने हम यहाँ से दूर निकल जायेंगे। कल, राजपुर से मैं आप को आप के गाँव, आप के भाई-बहिनों के बीच पहुँचा दूँगा।” मैं स्वयं नहीं जानता, उस समय मेरे अंदर इतना सब करने व कहने का साहस कैसे आ गया।

उस की आँखें फिर डबडबा आयीं, “आप मनुष्य नहीं देवता हैं”,

कुहासा और किरण]

वह बोली, “मेरे लिए इतना कष्ट उठाने को तैयार हो रहे हैं। लेकिन मैं तो चांडाली हूँ। आप के उपकार को ग्रहण तक नहीं कर सकती।”

मैं उस की बात का आशय न समझ पाया। बोला, “मैं आप का मतलब न समझ सका।”

लगभग रोते-से स्वर में वह बोली, “इस जले कपाल को ले कर दुनिया में आयी हूँ। अपने दुर्भाग्य से आपका परेशानियाँ में कैसे डाल दूँ? फिर पापिन तो हूँ ही, अब धोखेबाज़ कैसे बन जाऊँ? जो लोग मुझे पैसा दे कर यहाँ तक लाये हैं उन की खुशी के लिए सब कुछ करना मेरा कर्तव्य है। यदि उन के साथ इस तरह छल करूँगी तो ईश्वर के सामने क्या मुँह दिखाऊँगी? आज ईश्वर ने इस अवस्था को तो पहुँचा दिया है, कल अगर इस से ज्यादा दुर्गति करेगा तो वह भी सह लूँगी, लेकिन इस पापी पेट के लिए इस तरह छल-कपट करने को शायद मैं न सह पाऊँगी।”

मैं इस तरह खड़ा रह गया जैसे सैकड़ों घड़े पानी पड़ गया हो। कुछ हिम्मत बटोर कर मैं ने कहा, “यहाँ से निकल चलने पर आप अपने को एक पाप से तो सुरक्षित रख सकेंगी—इसे क्यों नहीं साँचती आप?”

एक क्षण चुप रह कर वह बोली, “एक पाप से बचने के लिए दूसरा पाप करना तो ठीक नहीं हो सकता। फिर इस तरह कब तक अपने को सुरक्षित रख सकूँगी? यदि ऐसा ही होता तो ये दिन क्यों देखने पड़ते?”

उस ने फिर कहा, “मैं जानती हूँ, मैं कुपथ पर बढ़ रही हूँ; लेकिन यह सब अपनी इच्छा से तो नहीं करना पड़ रहा है। यह तो मजबूरी है। परंतु इस तरह छल करने के लिए तो मैं मजबूर नहीं... ..

दूसरे, जब मेरा शरीर पवित्र नहीं रह गया है तो ऐसा छुल करने से क्या बनेगा ? भाग्य ने इस कीचड़ में ढकेला है, अब तो निकल सकना मुश्किल है । इस अपवित्र शरीर की थोड़ी सी रक्षा के लिए अपने सिर पर लदी पापों की गटरी का बोझा न बढ़ाना चाहूँगी ।”

क्रोध की एक तेज़ लहर मेरे सारे शरीर में दौड़ गयी—विचित्र है यह देवी भी !....पाप पुण्य की व्याख्या तो कर रही हूँ, परंतु यह नहीं कर सकती कि अपने काँ इन नर-राक्षसों से बचा ले—जितने भी समय के लिए हो सके, उतने ही समय के लिए । जान बूझ कर विपथगा बन रही है.....

मैं कुछ कहने ही वाला था कि वह जैसे मेरे भावों को ताड़ कर बोली, “आप मुझ पर बहुत नाराज़ हो रहे होंगे—मैं हूँ ही इसी लायक । लेकिन क्या करूँ, यह कमवयस्त हृदय आप की बात किसी तरह स्वीकार नहीं करता....आप अब जाइये । वे लोग आने ही वाले होंगे । मुझे इसी कुपथ पर चलते रहने के लिए छोड़ जाइये । कुछ प्राणी शायद इसीलिए जनमते हैं । आप ने मुझे जो स्नेह और संवेदना दी है उसे मैं जीवन भर न भूल सकूँगी । ईश्वर से प्रार्थना है कि वह आप को सदैव सुखी रहे । अच्छा, नमस्ते ।”

कुछ क्षण खामोश रह, चुपचाप हाथ जोड़ कर मैं दरवाज़े की ओर घूम गया.....”

विनय सहसा रुक गया । फिर बोला “बस । घटना इतनी ही है—इस के आगे-पीछे और कुछ नहीं है । यह तो बाद की बात है कि उस तमाम रात और उस के बाद भी कई दिन तक मैं इसी सब पर विचार करता रहा । और मैं अभी तक भी किसी निर्णय पर नहीं पहुँच सका हूँ । मैं समझ ही नहीं सका हूँ कि उस के उस आचरण के लिए उसे किस भावना ने प्रेरित किया—सत् ने या असत् ने ?!.....जान

कुहासा और किरण]

बूझ कर पाप-पंक में फँसने के लिए वह वहाँ रही, लेकिन उन लोगों से छुल कर अपना शरीर बचाना उसे नहीं रुचा....पापात्मा की संज्ञा तो उसे नहीं दी जा सकती, पर देवी की संज्ञा ?.....क्या इस योग्य वह थी ?.....फिर सोचता हूँ, थी वह देवी ही—बहुत सी देवियाँ विपथगा भी होती हैं न.....”

और विनय ने अपनी बात समाप्त कर दी ।

नरेश ने प्रतिवाद के लिए स्वर ऊपर उठाया । वह बोला, “आप भूल रहे हैं विनय साहब कि वह स्त्री थी और स्त्रियाँ तो....” और अचानक भगवान जाने उसे क्या हो गया कि उस का तीव्र स्वर गिरता चला गया, यहाँ तक कि बाद के कुछ शब्द उस के ओठों तक ही सिमट कर रह गये । उस की उठी दृष्टि नीचे झुक गयी और वह धीरे से खामोश हो गया ।

हम लोग हस्व-मामूल खामोश थे.....

सूक्ष्म बात

स्वर्णलता मलहोत्रा देखने में अत्यधिक रूपसी न थी; किंतु उस के समूचे व्यक्तित्व में कुछ ऐसा आकर्षण था कि देखने वाले अनायास ही उस की ओर आकर्षित हो जाते थे। उस के शरीर की गठन बहुत सुंदर थी; कद मँझोला था; और प्रोफ़ाइल व बैक-व्यू बहुत शानदार। यही कारण था कि जिस की भी निगाह उस पर पड़ती वहीं टिक जाती, और जब तक स्वर्णलता अपनी रिज़र्व मुद्रा बराबर ज्यों की त्यों रखे, लम्बे-लम्बे विचारवान डग भरती हुई आगे न निकल जाती, देखने वाला चुगुद की तरह खड़ा उसे तकता रहता।

बहुत-कुछ हाल ऐसा ही अभय का भी हुआ। वह उस शहर में होने वाली 'अखिल प्रांतीय चित्र-प्रतियोगिता' में भाग लेने आया हुआ था। प्रतियोगिता आरम्भ होने में अभी डेढ़ मास के लगभग समय बाकी था। अभय के इतने शीघ्र आने का कारण उस की कलाकारजन्य

कुहासा और किरण]

सनक व उस की हृदयग्राही अस्थिरता थी, जिस का अनुभव कलाकार उस समय करते हैं। जब कि वे दत्तचित हो कोई कृति समाप्त नहीं करते होते। इस शहर में उस का एक अंतरंग मित्र कौशल रहता था। अभय का विचार था कि वह एक-डेढ़ मास यहीं कौशल के पास निवास करेगा और यहीं प्रतियोगिता के लिए एक नवीन चित्र बनायेगा। कौशल, उस की पत्नी व कौशल की बहिन रत्ना का भी बहुत आग्रह था कि अभय उन के यहाँ आ कर कुछ समय उन के साथ रहे। सो अभय की निजी सनक व कौशल का स्नेह उसे वहाँ ले आया था, जहाँ उस ने तीन-चार दिन यों ही सोने व बैठे-बैठे सिगरेट पीने में गुँगा दिये थे। चौथे या पाँचवें दिन कॉलेज जाते समय रत्ना उस से बोली, “भाई साहब, आप दिन में यहाँ बैठे-बैठे क्या करेंगे ? चलिए, आज हमारा कॉलेज देख आइये। आज मेरा सिर्फ एक पीरियड है। उतने समय आप लाइब्रेरी में बैठ रहियेगा। पीरियड समाप्त कर मैं लाइब्रेरी आ जाऊँगी, फिर मैं आप को सारा कॉलेज घुमवा दूँगी।”

आगम करते रहने के कारण अभय के अंदर जो जड़ता-सी आ गयी थी उस दूर करने के लिए एक अच्छा अवसर मिलता देख अभय राजी हो गया। रिक्शे में बैठ वह रत्ना के साथ उस क कॉलेज चला आया। कॉलेज पहुँच अभय को लाइब्रेरी दिखला, रत्ना अपनी कल स अटेंड करने चली गयी और अभय वहाँ बैठा-बैठा अखबार उलटता-पुलटता रहा। जब उस का मन उकता गया तो वह बाहर निकल आया और लाइब्रेरी की सीढ़ियों के पास अन्यमनस्क भाव से खड़ा हो गया।

वही पहली बार उसे स्वर्णलता मलहोत्रा के दर्शन हुए, और (दुहराने के लिए क्षमा कीजियेगा) वह चुगद की तरह उसे देखता का देखता रह गया। स्वर्णलता अपनी मुक्त-मुद्रा को वैसा ही कसा-

तना रखा, अभय की ओर बिना देखे, लम्बे डग रखती हुई लाइब्रेरी में चली गयी। अभय ने गौर किया: यह युवती पीछे से भी बहुत अच्छी लगती है, जैसे किसी साचे में से गढ़ कर निकली हो। ओर सहसा बिजली की तरह एक विचार उस के मन में कौंध गया—वदि वह इस युवती का एक न्यूड बना सक !....इस युवती का निरावरण चित्र बना कर यदि वह प्रातयोगिता में रखे तो शायद वह बाजी मार ले जाय.... मैदान उसी के हाथ रहे....कितु ऐसा कैसे सम्भव हो सकता है !... वैसे युवती आधुनिक है, लड़कों के साथ कॉलेज में पढ़ती है; फैशन से कुछ अल्ट्रा-सिबिलाइज़ भी लगती है, कोई एतराज तो इसे होना नहीं चाहिये। लेकिन आखिर स्त्री हा तो है। यह प्रस्ताव सुनते ही शर्म से पानी-पानी हो जायेगा। लाख अल्ट्रा-सिबिलाइज़ और बोल्ड सही, एक पुरुष (और वह भी वृद्ध नहीं नवयुवक) के सामने निरावरण होना एक युवती के लिए कैसे सम्भव है !....तब ?....चित्र-प्रातयोगिता ?....

वह इसी उधेड़-बुन में पड़ा हुआ था कि पीरियड समाप्त कर रक्षा आ गयी। रक्षा को देखते ही अभय को लगा कि रक्षा यदि चाहे तो उस की रक्षा कर सकती है। सा उस के निकट आते ही वह बोला, “रक्षा, तुम से एक बहुत ज़रूरी काम आ रहा है। तुम्हें मेरी सहायता करनी पड़ेगी।”

रक्षा चौंक पड़ी। कुछ घबरा-सी भी गयी। हकलारा हुई बोली, “कहिये। क्या काम है ?”

अभय बोला, “नहीं नहीं, कोई घबराने का बात नहीं है। पहले तो तुम लाइब्रेरी के अंदर जा कर देख आओ कि वहाँ कौन लड़की बैठी हुई है ! अभी थोड़ी देर पहिले एक सुंदर-सी लड़की अंदर गयी है, मैं जानना चाहता हूँ वह कौन है”

कुहासा और किरण]

रक्षा सशक्त भाव से अंदर गयी। पाँच-एक मिनट बाद वह लौटी और बोली, “कोई भी नहीं। वहाँ तो बस लता है—स्वर्णलता, मेरी सहेली। और तो वहाँ कोई लड़की नहीं है।”

“तुम्हारी सहेली!” और अभय का चेहरा खिल उठा, “वह लड़की जो अंदर गयी है तुम्हारी सहेली है?... वह सुंदर-सी आकर्षक लड़की, जिस का चेहरा अजंता की मूर्तियों जैसा है, और जिस ने गले में मटरमाला पहन रखी है, लम्बे बालों की दो चाँटियाँ....”

“जी हाँ, वह स्वर्णलता ही है” भाई साहब की दिलचस्पी देख कर रक्षा के चेहरे पर मुस्कराहट आ गयी थी। एक क्षण रुक कर वह बोली, “क्यों, क्या बात है? क्या हो गया?” वह फिर मुस्कराया।

“कुछ नहीं,” अभय ने ज़रा झेंपते हुए कहा, “घर चलो। रास्ते में बातलाऊँगा।”

“और कॉलेज न घूमियेगा?” रक्षा ने आश्चर्य-चकित हो पूछा; क्योंकि अभय आया तो कॉलेज घूमने ही था।

“अरे गोली मारो कॉलेज को। इस समय तो चली चलो।” और वह रक्षा का हाथ पकड़ पास खड़े रिक्षे पर जा बैठा।

रास्ते में उस ने बात शुरू की। बहुत घुमा-फिरा कर और हेर-फेर के बाद वह अपना आशय व्यक्त कर पाया। सब कुछ कह जाने के बाद भी उसे ऐसा लगा, जैसे वह अपनी ओर से पूरी सफ़ाई नहीं दे पाया है। उस ने रक्षा की ओर देखा। वह लाज से सिर नीचा किये बैठी थी। टूटे-फूटे शब्दों में वह फिर कहने लगा, “देखो रक्षा, तुम मेरी छोटी बहिन हो। तुम से कोई परदा नहीं है। तुम से मैं सच कहता हूँ, मैं किसी बुरी भावना से यह प्रस्ताव नहीं रख रहा हूँ। मैं तो बल्कि उसे पूरी तरह देखूँगा भी नहीं। मुझे तो वह केवल मॉडेल के लिए चाहिये। वह दूर खड़ी रहेगी, बस। मैं लाइट [प्रकाश] का

एरेंजमेंट [व्यवस्था] भी ऐसा कर दूँगा कि मुझे बस उस की रूप-रेखा मात्र दीखे । उसे केवल दस-बारह सिटिंग [बैठक] देनी होंगी । मैं पच्चीस रुपये सिटिंग तक देने के लिए तैयार हूँ..... तुम अपनी सहेली को राज़ी करने की कोशिश तो करना...तुम्हीं देखो, मैं यह काम किसी निजी स्वार्थ के लिए कर रहा हूँ ? यह तो महज़ आर्ट के लिए है, आर्ट की सेवा के लिए है । माना, चित्र बन जाने पर श्रेय व प्रशंसा मुझे मिलेगी, किंतु वह चित्र सम्पत्ति किस की होगी ?....देश की ही तो । वह देश की ही तो निधि होगी.....यह बात तो मिस स्वर्णलता भी समझ जायेंगी । आखिर वह सम्य, सुशासित लड़की हैं, इंटलेक्चुअल हैं, एम. ए. में पढ़ती हैं; उन्हें मेरे प्रस्ताव को स्वीकार करने में कोई आशंका होनी तो नहीं चाहिये । तुम उन्हें सब बात अच्छी तरह समझा देना और पूरी कोशिश करना कि वह राज़ी हो जायें । वह तुम्हारी सहेली भी तो हैं । तुम तो उन्हें जोर दे सकती हो ! तुम्हारा अधिकार है उन पर ।”

रत्ना बड़ी कष्टपूर्ण स्थिति में थी । वह इस प्रसंग से घबरा गयी थी । कुछ कॉपती-सी आवाज़ में वह बोली, “ये तो सब ठीक है भाई साहब, लोकन स्त्री की लज्जा.....आप इस बात को क्यों भूल जाते हैं ? कोई भी स्त्री कितनी भी इंटलेक्चुअल व पढ़ी-लिखी क्यों न हो, किंतु किसी पुरुष के सामने इस प्रकार.....आप ज़रा सोचिये तो....” आगे वह कुछ न कह सकी ।

निराशा से अभय का सिर नीचे झुक गया । वह उस घड़ी को कोसने लगा, जिस में ये असम्भव विचार उस के मन में आया था । यदि यह उस के मन में ही न आता तो कदाचित् उसे इतना दुःख न होता; किंतु अब तो यह उस के अंतर में बहुत गहरे पैठ गया था और गड़े काँटे की तरह चुभने लगा था ।

दिन भर वह खिन्न रहा। उस की भाभी (यानी कौशल की पत्नी) ने कई बार मज़ाक़ द्वारा उसे छेड़ा, लेकिन वह उस से मस न हुआ। मुस्कराया तक नहीं। घोंघावसंत बना चुपचाप बैठा रहा।

शाम जब कौशल ऑफिस से लौटा, तब भी वह उसी प्रकार विरस भाव से बैठा हुआ था। कौशल ने उस से कुछ बात करनी चाही, जिसे उस ने 'हाँ, हूँ' कर टाल दिया। रात को खाना खाने बैठते समय उस की भाभी ने ज़बरदस्ती उस का हाथ पकड़ उस से साग्रह पूछा, "अभय साहब, आप का हमारी क़सम है जो आप इस समय ये न बतायें कि आखिर बात क्या है? आप उदास क्यों हैं?"

कौशल ने भी ज़िद की। तब अभय मुस्कराया, इस तरह जैसे किसी पर अहसान कर रहा हो। बोला, "यार कुछ नहीं। एक बेहूदा बात है। तुम घर-गृहस्थियों के सुनने लायक नहीं। छोड़ो।"

"लीजिये, इस बात से तो हमारी दिलचस्पी बढ़ गयी है। अब तो हम ज़रूर सुनेंगे।" भाभी ने ज़ोर दे कर कहा।

"भाभी, बात कुछ नहीं है। आप सुनेंगी तो हँसेंगी। रक्षा के साथ मैं आज कॉलेज गया था न, वहाँ रक्षा की एक सहेली स्वर्णलता का देखा। उस के सुंदर व प्रपोर्शनैट शरीर को देख अचानक मुझे ख़याल आया कि यदि उस का एक न्यूड पोर्ट्रेट बनाया जाय तो निस्संदेह वह एक ऊँची कला-कृति होगी। लेकिन इस के लिए आवश्यक है कि भिम लता मेरा मॉडल बन कर मुझे दस-बारह सिटिंग दें—जो कि किसी भी प्रकार सम्भव नहीं है। रक्षा की ये बात मेरी समझ में आ गयी है। इस कारण मैं ने यह विचार तो ख़तम कर

दिया है, लेकिन इस विचार की उपज का कारण अभी तक मुझे पीड़ा दे रहा है। और कोई बात नहीं है।”

अभय का ख्याल था कि उस की भाभी ये बात सुन कर हँस पड़ेंगी, लेकिन ऐसा हुआ नहीं। इस के विपरीत वह गम्भीर हो गयीं। कौशल ने भी कुछ सोचने की मुद्रा बना ली। भाभी तब कुछ सोचती हुई कड़ने लगी, “स्वर्णलता को तो मैं भी जानती हूँ। कई बार रत्ना के साथ यहाँ आयी है। अच्छी लड़की है। वैसे विचारों से खासी फ़ारवर्ड है, लेकिन आप के चित्र के लिए मॉडल बनने को राजी हो जाय, इस बात पर मुझे संदेह है। चीज़ यह है कि यह काम बहुत टेढ़ा है। स्वर्णलता क्या, कोई भी लड़की हो, किसी नवयुवक के सामने वस्त्रहीन होने के लिए कभी राजी नहीं हो सकती। हाँ, अगर चित्रकार भी कोई स्त्री हो, तब तो बात कुछ सम्भव हो सकती है..... लेकिन आप के साथ तो यह परिस्थिति सम्भव ही नहीं है। आप तो ठोस नवयुवक हैं.....”

सहसा कौशल ने फुर्ती से चुटकी बजायी और एक शरारत भरी मुस्कराहट उस के चेहरे पर आ गयी। वह बोला, “अभय, बस बात बन गयी दोस्त। तुम भूल गये कि तुम स्त्री ही हो। ज़रा याद करो—युनिवर्सिटी का एम. ए. का फ़ाइनल इयर। ‘हिंदी परिषद्’ की ओर से ‘प्रसाद’ जी का ‘स्कंदगुप्त’ खेला गया था—मैं भटार्क बना था और तुम विजया। हम दोनों ने अपने पार्ट कितनी अच्छी तरह किये थे। तुम ने तो कमाल ही किया था!.... अब यदि तुम कुछ दिनों के लिए फिर विजया....आई एम सॉरी, अभया बन जाओ तो स्वर्णलता तुम्हारा मॉडल बनना स्वीकार कर लेगी, और तुम्हारा चित्र बन जायगा जिस के सम्बन्ध में तुम निराश हो चुके हो। अभया बनने में तुम्हें कुछ कठिनाई भी नहीं होगी, क्योंकि दाढ़ी तो अभी तक तुम्हारी नहीं आयी

हुहासा और किरण]

है.... ..हँसो मत । मैं सीरियसली बात कह रहा हूँ । समझ लो, फिर एक नाटक में पार्ट कर रहे हो । विजया संगीतज्ञ थी, अभया चित्रकार होगी । और अभया देवी मेरी पत्नी सुनीता शर्मा की सहेली होंगी जो जबलपुर से कुछ दिनों के लिए हमारे यहाँ आयी हुई हैं और जो चित्र बना कर फिर वापस चली जायेंगी । अभया देवी चश्मा लगायेंगी और स्वभाव से बहुत कम बोलने वाली होंगी जो आवश्यकता से अधिक बात नहीं करती । रक्षा इस पड़यंत्र के पहले दृश्य में हमारी मदद करेगी । कल वह स्वर्णलता को यह कह कर यहाँ ले आयेगी कि 'आप को भाभी याद कर रही हैं ।' उस के आगे सुनीता अपने आप ठीक कर लेगी ।....बस, बात तय रही ।”

अभय अब तक मुस्करा रहा था । अब गम्भीर हो गया । बोला, “अपने शहर में मुझे जूते खिलवाने का इरादा है क्या ? एक बाल न बचेगा सिर पर !”

कौशल बोला, “अगर आप डरते हैं, तो इस जीवन में तो बन चुका आप का ये चित्र ! जनाब टेढ़े काम के लिए टेढ़ी ही चाल चलनी पड़ती है । माना कि इस में थोड़ा खतरा है, लेकिन तुम ज़रा सावधानी व साहस से काम लोगे तो तुम्हारा चित्र मज़े में बन जायगा और किसी को शक तक न होगा । यार, और भी कुछ नहीं तो थोड़ा फ़न ही हो जायगा । युनिवर्सिटी से निकलने के बाद तो कुछ शरारत की ही नहीं । यों ही दिमाग़ बेकार पड़ा हुआ कुंद हो रहा है । अच्छा तो बात पक्की रही.....”

अभय ने कुछ झिझकते-से कहा, “तुम कहते हो तो.....”

“बस ठीक है,” कौशल ने मुस्करा कर कहा, “तुम नर्वस न होना । कोई गड़बड़ न होगी । कल सुबह मैं तुम्हारे लिए बिग और

भेकअप का सामान व चश्मा लगा दूंगा । और सुनीत, तुम इन्हें अपने चार-पाँच पेयर साड़ी-ब्लाउज दे देना । आगे ईश्वर मालिक है ।”

दूसरी शाम स्वर्णलता रक्षा के साथ आ गयी । ड्राइंग-रूम में भाभी और अभया देवी बैठी हुई थीं । भाभी बड़े उत्साह से उठीं और स्वर्णलता को खींच कर अपने निकट सोफे पर बैठाती हुई बोलीं, “आओ लता, तुम ने तो हमारे यहाँ का रास्ता ही छोड़ दिया ।”

स्वर्णलता मुस्कराती हुई कहने लगी, “नहीं भाभी, ये बात तो नहीं है । इधर आने का कोई मौका ही नहीं मिला । आज रक्षा जबर्दस्ती खींच लायी तो आ गयी ।”

“बहुत कृपा की तुम ने हम लोगों पर,” भाभी हँसती हुई बोलीं, “मैं ने तुम्हें एक अत्यंत आवश्यक काम के लिए बुलाया है । आशा है तुम हमें निराश न करोगी ।”

“कहिये ।” कुछ गम्भीर होते हुए लता ने कहा ।

“जबलपुर से मेरी एक चित्रकार मित्र आयी हुई हैं—अभया देवी । आप बहुत सुंदर चित्र बनाती हैं । आप के कई चित्र पुरस्कृत भी हो चुके हैं । अगले महीने यहाँ जो चित्र-प्रतियोगिता होने वाली है, उस में आप भाग ले रही हैं । इस प्रतियोगिता के लिए आप एक न्यूड बनाना चाहती हैं, जिस के मॉडल की तलाश है । कई स्त्रियाँ आप ने देखीं । उन में जिन का चेहरा सुंदर था, उन का शरीर सुंदर नहीं था; और जिन का शरीर सुंदर था उन का चेहरा भाव-रहित था । मैं भी मॉडल बनने के लिए तैयार हुई, लेकिन अभया देवी ने मुझे भी रिजेक्ट कर दिया—ये कह कर कि मेरे चेहरे पर भाव टिकते नहीं हैं,

कुहासा और किरण]

आते जाते रहते हैं। तभी मुझे तुम्हारा ध्यान आया। मैं ने तुम्हारा चित्र—एक ग्रुप में रक्षा के साथ है न!—अभया देवी को दिखलाया। इस पर अभया देवी ने तुम से मिलने की इच्छा प्रकट की। ये हैं अभया देवी, और अभया जी, ये हैं मिस स्वर्णलता मलहोत्रा, जिन का मैं ने जिक्र किया था।”

“नमस्ते। बहुत प्रसन्नता हुई आप से मिल कर।” स्वर्णलता ने हाथ जोड़ते हुए कहा।

अभया देवी का हृदय बहुत बुरी तरह धड़क रहा था। बड़ी कठिनाई से अपने को संयत कर, हाथ जोड़ते हुए, मधुर स्वर में उन्होंने लता की नमस्ते का उत्तर दिया।

“आओ लता, पहले तुम्हें अभया देवी के दो-एक चित्र दिखला दें। तुम्हें अभया जी की कला के सम्बन्ध में कुछ अंदाज़ हो जायगा।” कह कर भाभी स्वर्णलता को अंदर कमरे में ले गयीं, जहाँ अभया देवी के बनाये कुछ प्रसिद्धि-प्राप्त चित्र रखे हुए थे। लता को चित्र बहुत अधिक पसंद आये। अभया देवी की कला ने उसे प्रभावित अवश्य किया।

लौट कर ड्राइंग-रूम में आते हुए भाभी ने स्वर्णलता से धीमे स्वर में प्रश्न किया, “तो लता, क्या सोचती हो? तुम अभया देवी के चित्र के लिए मॉडेल बनना पसंद करोगी?”

लता शरमा गयी। कुछ लजाती-सी बोली, “आप भी भाभी....”

“नहीं, मेरे विचार से तुम्हें स्वीकृति अवश्य देनी चाहिये। इस कारण कि तुम्हारे इतने सुंदर व सुगठित व्यक्तित्व को यदि कोई कलाकार किसी कला-कृति के लिए एक्सप्लॉयट करना चाहे तो तुम्हें इस बात पर गर्व होना चाहिये। ये चित्र यदि बन गया तो तुम्हारा यह सुंदर व्यक्तित्व अमर हो जायगा लता। इस चीज़ को इस तरह लो कि

आज से बीस वर्ष बाद तुम या कोई अन्य व्यक्ति इस चित्र को देख कर क्या सोचेगा ? क्या चित्र में अंकित व्यक्तित्व के प्रति देखने वाले को ईर्ष्या न हो जायगी ?.... लता, ज़रा बड़े दायरे में इस प्रस्ताव पर विचार करो..... लज्जा की बात मैं मानती हूँ । वह स्वाभाविक है । किंतु ऐसे अवसर क्या जीवन में बार-बार मिलते हैं कि एक कलाकार आप का इतनी महत्ता दे कि आप को अपने चित्र का मॉडेल चुने ?.... ज़रा सोचो, कितना बड़ा आदर एक कलाकार आप को दे रहा है !.....” भाभी ने समझाते हुए कहा । ये सब वे ही विचार थे जो दिन में अभय ने भाभी के सामने व्यक्त किये थे और जिन्हें उन्होंने लता को राजी करने के लिए अपने मस्तिष्क में जमा लिया था ।

स्वर्णलता गहरे विचार में डूब गयी थी । अनेक रंग उस के चेहरे पर आ-जा रहे थे जो उस के मस्तिष्क के हलचल के सूचक थे ।

भाभी ने फिर ट्रम्प-कार्ड फेंका, “वस्त्रहीन हो कर चित्र के लिए सिटिंग देना—सुनने में यह बात सचमुच बड़ी अनगनी और लज्जा की लगती है । लेकिन लता, तुम तो सुशिक्षित हो । ज़रा इस का विश्लेषण तो करो । वस्त्रहीन होना, इस विचार से ही लज्जा आती है, सही है; किंतु देखो न, वस्त्रहीन किस के सामने होना है—एक स्त्री के सामने ही तो । फिर पहले-दूसरे दिन सिटिंग देना जितना अटपटा और लजीला-सा काम लगेगा, उतना बाद में नहीं । शुरू में तो कुछ मानसिक अड़चन अवश्य ही महसूस होगी, परंतु दूसरे-तीसरे दिन सब ठीक हो जायगा । तुम्हें लगेगा भी नहीं कि तुम निरावरण हो कर किसी को चित्र के लिए सिटिंग दे रही हो । फिर कमरे में लाइट की व्यवस्था भी ऐसी रहेगी कि पूरा शरीर सुस्पष्ट नहीं होगा; शरीर की केवल रूप-रेखा ही स्पष्ट होगी..... तो तुम क्या उत्तर देती हो ?”

कुहासा और किरण

कुछ देर चुप रह स्वर्णलता ने प्रश्न किया, “इस चित्र के लिए मुझे कितनी सिटिंग देनी होगी?”

भाभी ने अभया देवी की ओर देखा। अभया देवी ने अपने स्वर को यथा-साध्य मधुर बनाते हुए उत्तर दिया, “यही कोई आठ-दस। सिटिंग देना आप की सुविधा पर निर्भर होगा। जिस दिन आप को समय मिले, आप आ जाइयेगा।”

“ठीक,” स्वर्णलता ने खड़े होते हुए कहा, “तो आप कब से काम शुरू करेंगी?”

“जब से आप समय दे सकें। यदि सम्भव हो तो कल से ही—” अभया देवी ने फुर्ती से उत्तर दिया। प्रसन्नता के कारण उन का चेहरा चमकने लगा था।

“अच्छी बात है। मैं कल शाम छः बजे आ जाऊँगी—छः बजे ठीक रहेगा न?” स्वर्णलता ने चलते-चलते पूछा।

“हाँ हाँ” अभया देवी ने तत्परता से उत्तर दिया।

यह कहना आवश्यक होगा कि रत्ना इस तमाम बातचीत के दौरान वहाँ न थी.....

इस के आगे जो कुछ हुआ उसे हम संक्षेप में कहेंगे। स्वर्णलता हर तीसरे दिन आती थी और एक-डेढ़ घंटे के लगभग सिटिंग देती थी। चित्रकार और उस के मॉडेल में बहुत कम—लगभग नहीं के बराबर ही—बातें होती थीं। अभया देवी एक नजर अपने मॉडेल को देखती और अपने चित्र में व्यस्त हो जातीं। चित्र बनता जा रहा था। अभया देवी के सिर हिला देने पर स्वर्णलता ब्लॉक से उतर जाती और अपने वस्त्र पहिन, अभया देवी का घन्यवाद ले, अपने घर लौट जाती।

अभया देवी देर तक चित्र पर बराबर काम करती रहती। चित्र बहुत सुंदर बन रहा था—बहुत ही सुंदर। स्वयं स्वर्णलता को चित्र बहुत अधिक पसंद था। वह तो अभया देवी की कला पर मुग्ध हो गयी थी।

चित्र पूरा हो गया। फ़िनिशिग टचेज़ दे कर वह प्रतियोगिता में भेज दिया गया। जैसा कि चित्रकार को विश्वास था, प्रतियोगिता के निर्णायकों ने उसे बहुत अधिक पसंद किया और सर्व-सम्मति से वह प्रांत का सर्वश्रेष्ठ चित्र व प्रथम पुरस्कार का अधिकारी घोषित किया गया। निर्णय के उपरांत वह अन्य चित्रों के साथ 'अखिल प्रांतीय चित्र-प्रदर्शनी' में रख दिया गया। प्रदर्शनी सर्व-साधारण के लिए खुली हुई थी। वहीं नीचे के कमरे में गोल मेज़ पर वह चित्र रखा हुआ था, जिस पर प्रथम पुरस्कार का लेबल लगा हुआ था। चित्र पर कोई शीर्षक न था। नीचे 'अज्ञेय' के 'शेखर' की एक पंक्ति लिखी हुई थी—“सौंदर्य कितना नग्न, व नग्नता कितनी सुंदर है !” चित्र के दाहिने कोने पर नीचे की ओर, बहुत छोटे अक्षरों में चित्रकार का नाम भी दिया हुआ था—‘अभय’....

कुछ चिढ़ कर आजिज़ी से पुष्पा बोली, “भागवान, तो अब टेसुए क्यों बहाती हो ? जिस समय वस्त्रों का मोह त्याग कर चित्र बनवाया था, उस समय क्यों न सोच लिया था कि बाद में कहीं रोने की नौबत न आ पड़े ! अब जब चित्र बन गया और प्रदर्शनी में लग गया, तब आप रोने बैठी हैं !....”

सुबकते हुए स्वर्णलता ने उत्तर दिया, “मुझे क्या मालूम था कि मेरे साथ ऐसा छल होगा !”

पुष्पा तेज़ स्वर में बोली, “तो अब जा कर रक्षा की गर्दन दबा न ! उसी ने तो तुझे इस षड़यंत्र में फँसाया है....”

कुहासा और किरण]

“नहीं, वह बेचारी तो निर्दोष है। वह इस षड्यंत्र में शामिल नहीं थी। वह तो मुफ्त में ही भाभी की चालाकियों में आ गयी—मेरी तरह।” स्वर्णलता ने रत्ना का पक्ष लेते हुए कहा।

“तो जा कर उन चित्रकार महोदय का कॉलर पकड़, और उन की अच्छी तरह से खबर ले।” पुष्पा ने हाथ से इशारा करते हुए कहा।

“चित्रकार महोदय से भी मैं मिल चुकी हूँ। उन से भी बातचीत ख़तम कर चुकी हूँ।” लता बोली।

“ऐसा !” किंचित् आश्चर्य से पुष्पा ने कहा, “तो कमबख्त, अब फिर ये रोना-धोना किस लिए मचा रखा है ? जब चित्र बन ही गया है और प्रदर्शनी तक में चला गया है तो तू अब शांति ही कर। अपना रोष-आवेश त्याग दे और चुपचाप बैठ।”

“शांति कैसे करूँ ?” झल्ला कर लता बोली, “छल से मेरा निरावर्ण चित्र बना लिया, इस बात पर तो मुझे रोष-आवेश है ही नहीं। मुझे तो जो भी क्रोध या झुंझलाहट है वह उन चित्रकार महोदय की बात पर है। उन की बात मुझे अभी तक काँटे की तरह चुभ रही है। मैं किसी भी तरह उसे नहीं भुला पाती।”

अब पुष्पा चौंकी। उठ कर लता के निकट आते हुए उस ने पूछा, “कौन सी बात ?...क्या कहा उन चित्रकार महोदय ने ?”

“कुछ नहीं। जब मैं प्रदर्शनी में अपना चित्र देख कर गुस्से से भरी चित्रकार महोदय के पास पहुँची और उन्हें उन की इस घटिया हरकत के लिए फटकारा, तो जानती हो हज़रत ने क्या फरमाया ? आप बड़े इतमीनान से बोले—मिस स्वर्णलता, आप ये मत भूलिये कि मैं कलाकार हूँ। और कलाकार जो कुछ भी करता है अपने निज के लिए नहीं, बल्कि समाज और जगत को सुंदर बनाने के लिए करता है।”

“नान्सेंस ! इसपर तुम ने क्या कहा ?” उत्सुकतापूर्वक पुष्पा ने पूछा।

“मैं ने जल कर कहा, ‘समाज को सुंदर बनाने वाले महोदय, आप शायद ये भूल रहे हैं कि छल-फरेब द्वारा एक युवती का निरावरण चित्र बना कर आप ने समाज की नैतिकता के नियमों की क्रूरतापूर्वक हत्या की है। इस प्रकार सामाजिक मर्यादा व प्रचलित रीति-परिपाटियों और पाबंदियों के विरुद्ध अनैतिकता बरतते हुए आप कभी समाज या जगत को सुंदर नहीं बना सकते।’ इस पर आप बोले, ‘मिस लता, प्रचलित परिपाटियों और पाबंदियों के विरुद्ध बगावत करना ही कला है। कलाकार को आप नैतिकता अनैतिकता की लकीरों से नहीं घेर सकती। कलाकार जो चाहे कर सकता है। वह सब नैतिक होगा; भले ही उस से आप के समाज की मर्यादा, रूढ़ि-रीति व परिपाटियों की हत्या हो। कलाकार उन्मुक्त है। वह रूढ़ि-रस्मों के बंधन में नहीं बौंधा जा सकता।”

पुष्पा ने कोई मन्तव्य नहीं प्रकट किया। चुनचाप बैठी रही।

सहसा वह बोली, “ठीक है। अपने-अपने विचार हैं। लेकिन इस बात से तुझे क्यों दुःख हो रहा है?”

एक क्षण रुक कर स्वर्णलता ने उत्तर दिया, “वह बहुत सूक्ष्म बात है। तू न समझेगी।” और चुप हो गयी।

“अच्छा जी! ऐसी बात है!... ज़रा बताना तो। मैं भी तो सुनूँ ऐसी कौन सी बात है जिसे मैं नहीं समझ सकती। बता तो... आखिर बताने में क्या हर्ज है?” पुष्पा ने आग्रह किया।

एक छोटी खामोशी के बाद अपने आप से ही शरमाती हुई स्वर्णलता बोली, “अच्छा तू हँसना मत। तुझे कसम है। मैं वैसे ही शर्म से मरी जा रही हूँ.... देख, अभय साहब का कहना है कि ‘कलाकार उन्मुक्त है। उस के लिए कोई बात अनैतिक नहीं है। वह जो कुछ भी करे सब नैतिक होगा, भले ही उस से समाज की मर्यादा व नैतिकता की हत्या हो।’.... और क्योंकि वह कलाकार हैं, वह निश्चय ही इस

कुहासा और किरण]

सिद्धांत पर अमल भी करते होंगे। लेकिन मैं पंद्रह दिन के लगभग उन के सामने रोज़ डेढ़-दो घंटे वस्त्रहीन खड़ी रही। मैं असुंदर भी नहीं हूँ—ये बात तो कहना ही बेकार है, क्योंकि उन्होंने स्वयं मुझे पसंद किया था। किंतु वह महज़ चित्र ही पूरा कर सके, बस!.... अच्छा, और अब देख, मेरे स्त्रीत्व का इतना बड़ा अपमान कर, अब वह कलाकार बनने का दावा करते हैं—कलाकार, जो कि उन्मुक्त होता है, जिस के लिए कोई पाबंदी नहीं होती; और जिस का कोई कदम अनैतिक नहीं होता!.... मुझे बस इसी बात का दुःख है..... तू शायद मेरी बात समझी नहीं!”

“नहीं” पुष्पा ने बुद्धू की तरह सिर हिला कर कहा। उस की आँवों से कोरापन भूजक रहा था। वह कुछ भी नहीं समझी थी।

“देख न, वह व्यक्ति जो कलाकार होने का दावा करता है और कहता है कि कलाकार के लिए कोई कार्य अनैतिक नहीं है, उस के सामने एक सुंदरी युवती पंद्रह दिन निरावरण खड़ी रहती है, और वह व्यक्ति महज़ चित्र ही बनाता है, बस। और फिर भी बड़े गर्व से अपने को कलाकार कहते हुए यही कहता है कि ‘कलाकार के लिए कोई बात अनैतिक नहीं होती!’.... बात बहुत सूक्ष्म है। तू अब भी नहीं समझी!.... तुझे अब कैसे समझाऊँ?.... भाई मुझे तो शर्म आ रही है....” और स्वर्णलता ने लाज के कारण दोनों हाथों से अपना मुँह ढक लिया।

पुष्पा कुछ क्षण मूढ़ की भाँति बैठी स्वर्णलता को ताकती रही। सहसा एक अनहोनी लज्जा से उस का चेहरा लाल हो उठा, और जैसे सूक्ष्म बात समझ में आ जाने के कारण एक शर्मीली और शरारती मुस्कराहट उस के चेहरे पर आ गयी जो बराबर फैलती ही चली गयी....

एकसरे

दादर ब्रिज से गुजरते हुए शैवाल को सहसा, बरबस पीछे हटाया हुआ, एक ख्याल आ गया और बुरी तरह खोस कर ढेर-सारा पीला कफ उगलते हुए उस ने बहुत तीव्रता से यह महसूस किया कि अब ऐसा और अधिक नहीं चल सकता। अपने स्वास्थ्य के प्रति की गयी यह उपेक्षा उसे डस कर सदैव के लिए मिटा देगी; और उस के बड़ा बनने तथा समूचे विश्व में नहीं, तो कम से कम, भारतवर्ष भर में अपनी ख्याति फैलाने की समस्त महत्त्वाकांक्षायें उस के मन में ही रह जायेंगी। माना कि इस समय उस की आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं है कि वह इस महानगरी में अत्यंत सावधानी और तन्मयता के साथ अपना इलाज करा सके; और सुयोग्य डाक्टरों और उन की कीमती दवाइयों एवं इंजेक्शनों के बिल उसी तत्परता के साथ चुका सके जिस तत्परता से वह अपने रहने, खाने और कपड़ों की धुलाई आदि के बिल चुकात

कुहासा और किरण]

है। तिस पर भी वह अपने दिन-प्रतिदिन नष्ट होते हुए स्वास्थ्य के प्रति और अधिक उदासीन नहीं रह सकता। उसे अपनी नियमित चिकित्सा करानी ही होगी—हाँ, इतना भर अवश्य हो सकता है कि डॉक्टर कोई ख्यातिप्राप्त न हो, महज़ डॉक्टर ही हो और सस्ता हो तो भी उस का काम फ़िलहाल तो चल ही जायगा। बाद की बाद में देखी जायगी।

वह उस समय प्रति दिन की ही भौंति खोदादाद सर्कल के एक होटल में खाना खाने जा रहा था। डॉक्टर को दिखलाने का दृढ़ निश्चय कर, वह होटल की ओर न जा, सर्कल पर ही के एक उपेक्षित कोने में एक डॉक्टर साहब के तिरछे लटकते हुए साइनबोर्ड की ओर मुड़ गया।

डॉक्टर साहब ने खड़े हो कर उस का स्वागत किया, और उस के कुर्सी ले बैठ जाने पर, उस का नाम पूछ कर अपने रजिस्टर में लिखते हुए उन्होंने पूछा, “आप को क्या तकलीफ़ है ?”

शैवाल ने बतलाया, कोई डेढ़-एक महीने पहले जुकाम हुआ था। धीरे-धीरे खाँसी भी हो गयी। और अब दोनों चीज़ें साथ-साथ चल रही हैं। कफ़ बहुत आता है और गले में ख़राश बराबर बनी रहती है। वदन भी कुछ टूटा-टूटा सा रहता है। मामूली समझ कर पहले तो रोग की तरफ़ कोई ध्यान ही नहीं दिया। बाद में सिरोलोन-रचि की एक बातल ली, लेकिन उस से कुछ भी लाभ न हुआ। अब जो हालत है, वह आप देख लीजिये।

डॉक्टर ने शैवाल का एक-एक शब्द अपने रजिस्टर में नोट कर लिया। तब स्टेथोस्कोप से अच्छी तरह उस की छाती व कमर की परीक्षा कर गम्भीर स्वर में कहा, “देखिये, मैं खाँसी के लिए आप को दवाई दे रहा हूँ.....साथ ही मेरी सलाह है कि आप फ़ौरन अपना

एकसरे करा लीजिये । ख़तरे की कोई बात नहीं है; लेकिन आप नौजवान हैं, सावधानी आप को बरतनी ही चाहिये ।”

शैवाल के दिल में एक सनाका-सा हो गया । झूबते-से स्वर में बोला, “जी, एकसरे की तो कोई बात नहीं । आप कहते हैं तो मैं ज़रूर करवाऊँगा; लेकिन फ़िलहाल मेरी हैसियत ऐसी नहीं है कि एकसरे पर बीस-पच्चीस रुपये खर्च कर सकूँ । पिछले चंद महीनो से मेरा हाथ बहुत तंग है । इस कारण एकसरे अगर इस वक्त टाल दिया जाय तो कोई हर्ज तो नहीं है ? आप मुझे दवाई देते रहियेगा न....”

डॉक्टर साहब सिर हिलाते हुए बोले, “नहीं-नहीं, ऐसा कैसे हो सकता है ? एकसरे को टालने का मतलब है, रोग को बढ़ावा देना । मान लीजिये कि अगले महीने तक रोग कुछ और शकल ले ले—एस्थमा या....” फिर बात वहीं रोक, कुछ ठहर कर सोचते हुए कहने लगे, “आप इस वक्त कितने रुपये तक खर्च कर सकते हैं ?...पंद्रह कर सकते हैं ?”

शैवाल झूबता हुआ बोला, “इस वक्त तो एक भी नहीं कर सकता । लेकिन आप कहते हैं तो पंद्रह रुपये कहीं से कज़्र लाने की कोशिश करूँगा और अपना एकसरे करवा लूँगा ।”

“ठीक है” डॉक्टर साहब बोले, “मैं पंद्रह में ही आप का एकसरे करवा दूँगा, यों पचीस लगते हैं । दादर बी. बी. सी. आई. में ‘रामकुँवर चैरिटेबल एकसरे इंस्टीट्यूट’ है । वहाँ के डॉक्टर मेरे परिचित हैं । आप मुझ से उन के लिए एक पत्र ले जाइए और पैसों का प्रबंध कर, इस पत्र को उन्हें दे अपना एकसरे करवा लीजिये । ये बहुत ज़रूरी है । वैसे इतने मैं आप को दवाई देता रहूँगा ।”

शैवाल ने चुपचाप अपना सिर हिला दिया । डॉक्टर साहब पैड खींच कर पत्र लिखने लगे । पत्र समाप्त कर, लिफाफे पर पता लिख

शैवाल को देते हुए बोले, “मैं ने इस में सब कुछ लिख दिया है । आप जा कर अपना एक्सरे करा लीजिये । रिपोर्ट वे लोग अपने आप मेरे पास भेज देंगे ।”

पत्र और मिक्सचर को शीशी ले, डॉक्टर से सब हिदायतें समझ, शैवाल ने उन से फीस की बाबत पूछ कर कुछ मिमियाते हुए पाँच का एक नोट उन के सामने रख दिया, जो उन्होंने दो-तीन बार देख, अपनी उँगलियों पर एक-आध बार लपेट, शैवाल की रोनी-सी सूरत पर तीन-चार विचित्र-सी नज़रें डाल आखिर अपनी जेब में रख ही लिया । शैवाल की जान में जान आयी । वह दूकान से बाहर निकला ।

ऑफ़िस पहुँच कर शैवाल सीधा अपने मैनेजर साहब से मिला । ऑफ़िस मैनेजर उस पर थोड़े मेहरबान थे । उसे देख कर अंग्रेज़ी में बोले, “कहिये मिस्टर शैवाल, क्या बात है ?”

शैवाल ने कहा, “मैं आप से कुछ कहना चाहता था । आप इधर शायद ये नोट कर रहे हों कि पिछले कुछ दिनों से मेरी तबियत गिरी हुई रहती है । ज़्यादा काम नहीं कर पाता । अब तक तो मैं ने खासी लापरवाही बरती, लेकिन अब साँच रहा हूँ कि ढंग से अपना इलाज करवा लूँ, ताकि रोग बढ़ कर दूसरी शकल न लेने पाये !”

“ज़रूर....ज़रूर....” मैनेजर साहब ने तपाक से कहा, “आप अपने इलाज के लिए छुट्टी चाहते हैं ?....कितने दिन की ?”

शैवाल मुस्करा उठा । बोला, “जी छुट्टी नहीं, मुझे कुछ रुपये चाहियें—सख़्त ज़रूरत है । अपना एक्सरे करवाना है, दो-तीन दिन के अंदर-अंदर ।”

मैनेजर साहब कुछ क्षण चुप रह कर कहने लगे, “देखिये, आप तो जानते ही हैं, हमारे यहाँ एडवांस देने का सिस्टम नहीं है; क्योंकि हम लोग तनख़्वाहें ठीक सात तारीख़ को दे देते हैं । इस वजह से

आप को एडवांस कुछ दिलवाने में तो मैं मजबूर हूँ । और कोई बात हो तो बताइये ।”

मैनेजर साहब की इस साफ़गाई पर शैवाल निराश हो गया । कुछ देर वैसा ही खड़ा रहा, फिर कहने लगा, “अच्छा तो फिर जाने दीजिये ।” और चलने लगा ।

उस को निराश लोटते देख कर मैनेजर साहब को थोड़ी दया हो आयी, बोले, “सुनिये,” और शैवाल के निकट आने पर धीमे स्वर में पूछने लगे, “कितने रुपये से आप का काम चल जायगा ?”

“पंद्रह से । सिर्फ़ पंद्रह रुपये एक्सरे के लिए देने होंगे ।” शैवाल ने आशा-सूत्र पकड़ते हुए उत्तर दिया ।

“ठीक है । आप पंद्रह रुपये मुझ से ले लीजिये और अपना एक्सरे करवा लीजिये ।” मैनेजर साहब ने अपने पर्स से रुपये निकालते हुए कहा ।

“बहुत-बहुत धन्यवाद !” शैवाल ने रुपये लेते हुए अपनी कृतज्ञता प्रकट की, “आपने मेरा काम चला दिया । मैं अगली तनख़्वाह पर ही.....”

“ठीक है । ठीक है” मैनेजर साहब बात वहीं रोकते हुए बोले, “तो आप एक्सरे कब करवा रहे हैं ?”

“जी, कल एक बजे ।” शैवाल ने कृतज्ञ स्वर में उत्तर दिया ।

“अच्छा, मुझे भी अपनी रिपोर्ट दिखलाइयेगा कि क्या शिकायत है ?” मैनेजर साहब ने वालदैन् वाले लहजे में कहा, “आप लोग भी कमाल करते हैं ! भला इस उम्र में भी कभी एक्सरे की ज़रूरत पड़ती है ? बेकार का वहम पालने में न जाने क्या मज़ा आता है ?” और हँसने लगे ।

कुहास : और किरण]

बिना एकसरे के ही शैवाल का मन हलका हो गया था। वह भी हँसने लगा।

दूसरी सुबह दस बजे के लगभग शैवाल होटल में बैठा खाना खा रहा था कि बारह-एक साल का लड़का काउंटर के सामने आ कर होटल के प्रोप्राइटर सरदार बलवंत सिंह से गिड़गिड़ा कर कहने लगा, “सरदार जी, मुझे तीन रुपये दे दीजिये। नहीं तो आज स्कूल से मेरा नाम कट जायगा।”

शैवाल का कौर, जो हाथ से मुँह की ओर बढ़ रहा था, वहीं रुक गया। उस ने गर्दन घुमा कर देखा, दुबला-सौंवला-सा एक लड़का, नंगे पैर, नंगे सिर, कॉख में तीन-चार किताब-कॉपियें दबाये, बड़ी करुणा के साथ सरदार के भावहीन चेहरे को आस-भरी दृष्टि से देख रहा है। लड़के ने खाकी कमीज़ और खाकी ही हाफ-पैंट पहन रखा था।

सरदार ने अब उस की ओर एक आग्नेय दृष्टि डाली और बोला, “भागो यहाँ से। न जाने कहाँ से आ जाते हैं ? कंगले कहीं के.....” और बाद के शब्द उस की घनी दाढ़ी व घनी मूँछों के अंदर छिपे ओठों के बीच ही बुदबुदाते रहे। बाहर न आ पाये।

लड़का लगभग रोने पर आ गया। भरे स्वर से गिड़गिड़ाते हुए कहने लगा, “मैं सच कह रहा हूँ सरदार जी। अगर आज मैं ने अपनी फीस के तीन रुपये नहीं जमा किये तो कल मेरा नाम कट जायगा। मेरे माँ-बाप नहीं हैं। मुझे कोई फीस देने वाला नहीं है। मुझ पर दया करो। मैं तुम्हारे आगे हाथ जोड़ता हूँ।” और वह हाथ जोड़ फूट-फूट कर रोने लगा।

बालक के कहने में जो सचाई, और रुदन में जो दर्द था उस ने शैवाल के अंतर को छू दिया; और वहीं उसी तरह बैठे-बैठे सहसा उस की आँखों के सामने कई वर्ष पहले का इस से मिलता-जुलता एक चित्र थिर हो उठा, जिस में बारह या तेरह वर्ष का एक मातृ-पितृ-हीन बालक इसी प्रकार आँसू बहाते हुए कुछ अपरिचित व्यक्तियों से अपनी स्कूली फीस के लिए गिड़गिड़ा रहा था और वे व्यक्ति उस बालक के रोने को एक छल या अभिनय समझ उसे दुतकार रहे थे.....और धीरे-धीरे बचपन का वह शैवाल इस बालक के रूप में परिवर्तित हो गया जो शैवाल की ही तरह अत्यंत पीड़ा के साथ कह रहा था, 'मेरे माँ-बाप मर गये हैं' और जिसे मोटा सरदार रूखे स्वर में जवाब दे रहा था कि 'हम क्या करें ? हम ने कोई यतीमखाना खोल रखवा है ?'.....और तब शैवाल से न हो सका कि वह खाना खतम कर सके । सो खाना बैसा ही छोड़ वह उठ खड़ा हुआ और बालक को ठहरने का संकेत कर मुँह-हाथ धोने चला गया ।

लौट कर वह बालक के निकट आया और उस से पूछने लगा, "तुम्हें फीस के वास्ते चाहिये पैसे, या किसी और काम के लिए ?"

बालक का रोना हलका पड़ गया था, लेकिन दोनों गाल अभी तक आँसुओं से तर थे । बहते आँसू पीते हुए उस ने उत्तर दिया, "जी, फीस के वास्ते ही चाहिये—मैं पुछवा सकता हूँ आप के सामने ।"

"किस से पुछवा सकते हो ?" शैवाल ने प्रश्न किया ।

"जी अपने क्लास टीचर से ।"

"कहाँ है तुम्हारा स्कूल ?"

"किंग्स सर्कल में । एन. सी. साउथ इंडियन हाई स्कूल । मैं वहीं पढ़ता हूँ—छठी क्लास में ।" बालक ने कुछ विश्वास पाते हुए कहा । उस के आँसू थम चले थे ।

कुहासा और किरण]

सरदार जी अब तक चुपचाप खड़े ये सब देख रहे थे, लेकिन अपने होटल में अपने ही सामने शैवाल का उस अपरिचित लड़के से अधिक दिलचस्पी लेते देख वह और अधिक खामोश न रह सके। शैवाल से बोले, “आप भी किस चक्कर में फँस रहे हैं मिस्टर ? ये तो बम्बई है। यहाँ तो इस तरह का ढोंग कर पैसे माँगने वाले हज़ारों टकरते हैं। एक दिन शाम तक यहाँ होटल में ही बैठे रहिये। देखिये फिर। इस छोकरे जैसे कितने आते हैं ! किसी की जेब कट गयी होती है, किसी की बीबी के इस परदेस में बच्चा हं गया होता है....किसी का सामान स्टेशन पर चोरी चला गया होता है....बस, ऐसों का तौता लगा ही रहता है। और देखा ये गया है कि इस तरह रो-धो कर माँगने वाले सब चार सौ बीस होते हैं। मुसीबतें हम पर भी पड़ी हैं बाबू साहब। हमारी तो लाखों की जायदाद ख़तम हो गयी पिछले दंगे में। लाहौर से यहाँ भाग आना पड़ा, लेकिन इस तरह आँखों में आँसू हमारे कभी नहीं आये”..... और अपनी बात की ताईदगी के लिए उन्होंने अपने अन्य ग्राहकों की ओर देखा जो मुस्तैदी से खाना खाते हुए भी सरदार जी की बात पर अपने सिर हिलाये बिना न रह सके।

एक तीव्र विराक्त से शैवाल का मन भर उठा....ये मोटा भैंसा मुसीबतों और आँसुओं की बात करता है ! इसे क्या मालूम कि मुसीबतें छुटपटाते इंसान को क्या-क्या करने के लिए विवश कर डालती हैं ! लेकिन इस भैंसे ने सच्ची मुसीबतें देखी-उठायी कहाँ हैं ? दागी दिल वाला ये जानवर भले प्राणी को भी अपनी ही तरह दाग़दार समझता है....और उस की ‘हाँ’ में ‘हाँ’ मिलाने वाले ये काठ के बम्बइया चलते-फिरते खिलौने—मशीन की सभ्यता ने जिन की समस्त मानवीय भावनाओं को स्पंज कर डाला है—ये मानवता-शून्य खिलौने एक दुःखी मानव की पीड़ा क्या समझेंगे !....

अब शैवाल बोला, “देखो भाई, मैं तुम्हारे साथ तुम्हारे स्कूल चलता हूँ। मैं तुम्हारे क्लास-मास्टर से भी मिलूँगा और तुम्हारे हैड-मास्टर से भी, और कोशिश करूँगा कि तुम्हारी फीस माफ हो जाय। जिन बच्चों के माँ-बाप नहीं होते, उन की फीस तो...” और सहसा वह रुक गया क्योंकि उसे ध्यान आ गया था कि स्कूल में फीस माफ या आर्धा कराने के लिए भी तो सिफारिशें चलती हैं। जिन की खासी सिफारिश होती है उन को फीस में अवश्य ही रियायत मिलती है; बिना सिफारिश वाले की पूछ कहीं नहीं है—वह लागू बेसहारा और जरूरतमंद हो !.....

एक विजयपूर्ण दृष्टि सरदार और खाना निगलते हुए जीवित पुतलों पर डाल, शैवाल सीना फुलाये, उस बालक को हाथ का सहारा देता हुआ होटल के बाहर निकाल लाया। मुस्कराते हुए उस ने सुना—सरदार भोंपे स्वर में उपस्थित ग्राहकों से कह रहा था, “अभी बम्बई में नये आये हैं !” और यह सुन उस की मुस्कराहट और बढ़ गयी थी।

सड़क की पटरी पर आ कर उस ने बालक से पूछा, “ट्राम पकड़ लें ?”

बालक अब संयत स्वर में बोला, “क्यों इकतरी खर्च करते हैं ? पैदल चलते हैं—कोई बहुत दूर नहीं है।”

शैवाल मुस्कराया, “अच्छा तो चलो।”

और रास्ता चलते-चलते उस गुमसुम बालक ने धीरे-धीरे अपनी गाथा शैवाल को सुना डाली। वह दक्षिण भारत का रहने वाला है। नाम शास्त्री है। पिता पंडिताई और पूजा-जाप करते थे—यहीं बम्बई में। पिछले वर्ष उनका देहांत हो गया है। माँ बचपन में ही चल बसी थी। मजबूरन उसे अपने दूर के चाचा पर ‘भार’ बन कर रहना पड़ा। समर्थ होते हुए भी चाचा ने इस ‘भार’ से किनाराकशी कर ली है।

कुहासा और किरण]

अब हालत यह है कि वह सोता तो अपने चाचा के ही घर है, लेकिन एक टाइम का खाना उन घरों में खाता है जहाँ अपने पिता की मृत्यु के बाद से वह पूजा करने लगा है—[पिता उसे पूजा करना सिखा गये थे, इसी पूजा की बदौलत उसे एक टाइम खाना मिल जाता है। दूसरे टाइम वह खाना खाता ही नहीं, बस पानी पी लेता है।] पहले फीस आधी थी, इस कारण पूजा में जो एक-दो आने कभी-कभी मिल जाया करते थे उन्हें जोड़ कर महीने भर में फीस निकल ही आती थी; लेकिन इधर पाँचवी क्लास में परीक्षा में उस के बहुत कम नम्बर आये जिस से स्कूल वालों ने उसे पास कर छुटी में तो चढ़ा दिया मगर फीस पूरी कर दी। पिछले मर्ह ने तो उस ने किसी न किसी तरह जोड़-तोड़ कर फीस दे दी, मगर इस माह अब तक पैसे न जुट सके और आज आखरी तारीख आ गयी। सुबह घर पर चाचा से पैसे माँगे तो उन्होंने बुरी तरह झिड़क दिया और माँ-बाप को भी गाली दी। परेशानी की हालत में कुछ नहीं सूझा ता यही ख्याल आया कि किसी होटल या रेस्टोरेंट में चल कर माँग लूँ। ये लोग दिन भर में पचास-सौ कमा लेते हैं, तीन रुपये इन के लिए कौन सी बड़ी बात होगी? यही सोच वहाँ होटल में गया था। फिर वहाँ शैवाल मिल गया था और उस के बाद.....

बालक कहता जा रहा था, “जी मैं काम करने से नहीं डरता। मुझ से आप कोई भी काम करवा लीजिये, मैं फौरन करूँगा; मगर मुझे पढ़ने से बहुत प्यार है। पढ़ाई छोड़ कर मैं कुछ भी न कर सकूँगा। पढ़ने के साथ मैं घर का कोई भी काम या छोटी-मोटी नौकरी कर सकता हूँ। मेरी पढ़ाई में कोई हर्ज न होगा। लेकिन मैं पढ़ना नहीं छोड़ूँगा—चाहे कुछ भी क्यों न हो। अभी मैं छुटी में ही हूँ—कम से कम

बी० ए० तो मैं जरूर करूँगा ।” और उस के उस पवित्र आंतरिक उत्साह से उस का पीला-पीला सा-चेहरा चमकने लगा ।

बालक की बात शैवाल के अंतर को छू गयी । इस निराश्रित बालक की ही तरह चंद साल पहले उस निराश्रित बाल-शैवाल की भी तो यही कामना और माधना थी कि वह अपनी प्रतिकूल परिस्थितियों से जूझता हुआ अवश्य ही उच्चतम शिक्षा प्राप्त करे । उस की लगन ने उस की कामना पूर्ण भी करा दी थी और वह एम० ए० हो गया था । ये एक अलग बात थी कि एम० ए० हो कर भी आज वह अपनी ईमानदारी और सचाई के कारण [यों कहें, अपनी व्यवहार-अकुशलता के कारण] उतना सहाय और उतनी ही डाँवाडोल स्थिति में था, जैसा अपने विद्यार्थी काल में था । किंतु इस से क्या ? पढ़ाई क्या केवल पैसा कमाने के लिए ही की जाती है ?.... आज शैवाल अपने अन्य युनिवर्सिटी-साथियों की तरह अपनी एम० ए० की दर्शनी हुंडी को कैश नहीं करा पाया है, मगर उसे इस बात का किंचित् भी मलाल नहीं है; क्योंकि अपनी शिक्षा से उसे ज्ञान प्राप्त हुआ है, विवेक प्राप्त हुआ है, और सब से बड़ी चीज मानवीय संवेदना प्राप्त हुई है । आज वह पराधी दुःख-पीड़ा-कसक अधिक तीव्रता से महसूस कर पाता है.... चलते-चलते शैवाल ने फिर एक नज़र उस बालक को देखा जो सिर झुकाये उस के साथ कदम उठा रहा था । और तब अचानक ही शैवाल ने निश्चय किया कि नहीं, वह इस स्वप्नदर्शी बालक का दिल नहीं तोड़ेगा । वह इस बालक की सहायता करेगा और इसे ऊँची शिक्षा दिलवाने की पूरी कोशिश करेगा । ये कोई तर्क नहीं कि जब वह एम० ए० हो कर कुछ न कर सका तो ये सीधा-सादा व सच्चा बालक बी० ए० हो कर क्या कर लेगा ? शायद तब तक समय बदल जाय और तब ईमानदार व सच्चे व्यक्तियों का आदर हो सके व उन्हें

कुहासा और किण्व]

ऊपर उठने की सुविधा मिल सके । और अगर न भी मिल सके, तो भी क्या ? इस भोले बालक के दिल में ये अरमान तो नहीं रहेगा कि वह अशिक्षा के गहरे गर्त में ही गिरा रह गया है । पढ़-लिख कर वह पैसे वाला आदमी न सही, एक अच्छा नागरिक तो बन सकेगा !... और शैवाल का निश्चय दृढ़ हो गया । वह अपनी आवश्यकताओं को कुछ और कम कर इस बालक की शिक्षा-सम्बन्धी सहायता अवश्य करेगा ।

स्कूल पहुँच कर वह शास्त्री के क्लास-टीचर से मिला । उन्होंने भी यही कहा, “लड़के की आर्थिक स्थिति बहुत खराब है; तिस पर भी उसे शिक्षा प्राप्त करने का बहुत अधिक चाव है । उस की लगन से वह भी बहुत अधिक प्रभावित हैं । वह स्वयं उस की मदद करते, किंतु विवश हैं, क्योंकि उन की अपनी स्थिति ही.....और फिर आजकल का टाइम.....”

शैवाल ने कहा, वह उन की बात समझ गया है; और यही कारण है कि वह इस बालक की सहायता के लिए खड़ा हुआ है । उसने अपनी जेबें टटोलीं और एकतरे के लिए रखे वही पंद्रह रुपये निकाले और शास्त्री का उम माह की तथा अगले चार माह की फीस अदा कर दी । शास्त्री और उस का क्लास-टीचर आश्चर्य से शैवाल को ओर देखते रहे । कोई कुछ न बोला । हाँ, जब फीस की रसीद शैवाल ने शास्त्री की ओर बढ़ायी और कहा, “लो मिस्टर, ये तुम्हारी अगले चार माह की फीस की रसीद । इसे सँभाल कर रखना !” तो हाथ आगे बढ़ाते हुए शास्त्री की आँखें डबडबा आयीं । उस ने कहा कुछ नहीं, लेकिन जिस

दृष्टि से उस ने शैवाल की ओर देखा वह स्पष्ट कह रही थी कि इस बालक का रोम-रोम शैवाल का ऋणी है ।

शैवाल ने तब एक कागज़ पर अपना पता लिख कर शास्त्री को ये कहते हुए दे दिया, “अब जब भी फ़ीस या किताब-कॉपी या किसी भी चीज़ की तुम्हें ज़रूरत हो तो मेरे पास इस पते पर बेभिभक्त आ जाना ।”

अगली सुबह जब शैवाल ऑफ़िस पहुँचा तो उस के मैनेजर साहब ने उस से प्रश्न किया, “कहिये जनाब, एकसरे करवा लिया आप ने ?”

शैवाल ने सोचते हुए उत्तर दिया, “जी हाँ ।”

“क्या रिपोर्ट आयी ?”

शैवाल ने उत्तर दिया, “जी, रिपोर्ट तो नहीं मिली ।”

“कब मिलेगी ?”

शैवाल सोच में पड़ गया । धीरे से बोला, “जी, ठीक-ठीक तो नहीं कह सकता । शायद रिपोर्ट मिले भी न ! लेकिन इतना मुझे यकीन हो गया है कि रिपोर्ट मेरे फ़ेवर में ही होगी ।”

मैनेजर साहब उस के चेहरे की तरफ़ देखते हुए बोले, “मैं आप की बात समझा नहीं ।”

शैवाल ने तब उन्हें समझाना चाहा कि उस का एकसरे तो अवश्य हो गया है, लेकिन फेफड़ों का नहीं, हृदय का हुआ है । साथ ही, एकसरे करने वाला कोई मामूली डॉक्टर नहीं था, बल्कि इस दुनिया के सब डॉक्टरों का डॉक्टर था, जिस ने इस ढंग से एकसरे लिया कि शैवाल, को भी पता चल गया कि इस यंत्र-चालित महानगरी के बीच रहते हुए भी उस का हृदय इतना स्पंदन-रहित नहीं हुआ है कि किसी

कुहासा और किरण]

दुःखी एवं पीड़ित की वेदना को अनुभूत न करा सके । उस का हृदय [भले ही वह अस्वस्थ प्रतीत हो] अनेक स्वस्थ हृदयों से अधिक स्वस्थ है । इस कारण उस के लिए भय या चिंता की कोई आवश्यकता नहीं है । वह रोग की ओर से निश्चिंत हो अपने रास्ते पर आगे बढ़ सकता है !....लेकिन ये तमाम बात इस क़दर 'वेग' [अस्पष्ट] थी कि शैवाल लाख प्रयास के बावजूद भी अपने मैनेजर साहब को इसे समझाने की कोशिश में सफल नहीं हो सकता था ।

....और शैवाल काफी देर तक वैसे ही खड़ा, सिर खुजाता हुआ, सोचता रहा कि आखिर न समझायी जा सकने वाली ये बात मैनेजर साहब को कैसे समझाये !...

कुद्दासा और किरण

संयोजक महोदय के, अपने दो-मिनटी भूमिका-रूपी वक्तव्य के पश्चात्, कवि का नाम घोषित करते ही श्रोतागण प्रसन्नता के कारण चमक उठे।

कवि शांत भाव से अपने स्थान पर से उठ, माइक के सम्मुख आ गया।

खिले चेहरों से, अपनी उमड़ती प्रसन्नता को स्तुलित करते हुए, अनेक लोग अभी तक कवि का नाम बार-बार ले रहे थे। बहुत से हाथ और उँगली उठा, उस की ओर निर्देश भी कर रहे थे। कवि अपने स्थान से छः सौ मील दूर इस महानगरी में कविता पढ़ने आज पहली बार आया है। स्त्रियाँ व युवतियाँ मुस्कराती मुद्रा से कंधे ऊपर उठा या अपनी सहेलियों को कुहनी मार, कवि का नाम दुहराती हुई अपनी आंतरिक उत्सुकता का शमन कर रही थीं—उस चिर-उत्सुकता

कुहासा और किरण]

का, जो बहुत शीघ्र ही मिटने वाली थी; क्योंकि कवि अपना कविता-पाठ आरम्भ ही करने वाला था ।

कवि ने अपनी दृष्टि ऊपर उठा सामने देखा । बायीं ओर स्त्रियों का ब्लॉक था जो पुरुषों के ब्लॉक ही की भाँति ग्वान्वाच भरा हुआ था ! पहली क़तार से अंतिम क़तार तक गुँथे हुए सिर ही सिर दीख रहे थे । कवि ने अपनी दृष्टि फेर ली—हाँच में वह पूरी सेटिंग थी जो एक नवयुवक कवि की हृदय-धड़कन को अठगुनी कर सकती थी; उस के चेहरे पर स्वेदकण उत्पन्न कर सकती थी तथा स्त्री-वर्ग की इतनी उपस्थिति के कारण उसे सचेत कर, उस की वाणी को अधिक सुरीली व उस के पढ़ने के ढंग को अधिक प्रभावोत्पादक तथा अचूक बना सकती थी..... लेकिन कवि को अब यह सब क्या ? वह धुकधुकी वाली अवस्था समाप्त हो चुकी है । कवि-सम्मेलन रूपी अनेक प्रगाढ़ सागरों को वह अत्यंत निपुणता व दक्षता से पार कर चुका है । अब तो समूचे देश में उसकी कविता, उसकी मधुर वाणी तथा उस के प्रभावशाली प्रवचन की धाक जम चुकी है । वह तो एकस्वर से देश का सर्वश्रेष्ठ लिखिक पोएट [गीति-कवि] माना जा चुका है ।

कवि ने एक बार फिर चारों ओर देखा—उत्सुक चेहरे.....

कुमकुसाते ओंठ..... चलती हुई आँखें.....और वह उफनता हुआ स्त्री-सौंदर्य..... वीतरागी की भाँति कवि ने अपनी दृष्टि हटा ली और मंच पर बैठे हुए संयोजक महोदय तथा अन्य कवियों की ओर उन्मुख हो बोला, “मैं आप को अपने नये गीत सुनाता हूँ.....”

कविता-पाठ प्रारम्भ हो गया । गीत के दूसरे-तीसरे पद के समाप्त होते ही लोग अपने अस्वस्थ भूल गीत के उतार-चढ़ाव में लीन होने लगे । गीत की स्वर-लहरियों के साथ वे भी तन्मयतापूर्वक बहने लगे । उन की चेतनाओं पर से नियंत्रण हट गये थे और वे जानते-बूझते

बेसुध हाँते जा रहे थे—एक नशे का सा आलम उन पर, छाता जा रहा था जिस में अपने आप को भूलते हुए बड़ा आनंद आता है, जागरण और विस्मरण की उस मिश्रित अवस्था में वे डूब-उतरा रहे थे—कभी लगता हम हैं..... दूसरे ही क्षण लगता हम नहीं हैं..... कोई नहीं है..... केवल एक लय है..... एक स्वर है..... फिर स्थिति स्पष्ट होती, हम एक चहारदीवारी से घिरे हैं..... सहसा लगता वही स्वर उभर रहा है..... उस के अतिरिक्त कहीं कुछ नहीं है..... स्वर ऊपर उठता है..... हम भी हलके हो ऊपर उठते जाते हैं..... स्वर थिरकता है..... हम उस से एकाकार हो जाते हैं..... स्वर के साथ-साथ बहते चले जाते हैं—एक ताल, एक लय के साथ, दूर-दूर-दूर, न जाने कहाँ... .. स्वर धीमा पड़ता है, फिर एक गूँज छोड़ जाता है—एक प्रिय और फिर न लौटने वाली गूँज, जो अधिक नहीं टिकती..... सदसा श्रोतागण चौंक कर चेत जाते हैं—खाली माइक साँथ साँथ कर रहा है। कवि अपना तीसरा गीत समाप्त कर चुका है और रुमाल से अपना मुँह पोंछ रहा है।

श्रोतागण अब अपनी देर से रोकी हुई साँस छोड़ते हैं। रमणियों के चेहरों पर फिर मुस्कराहटें दोड़ जाती हैं। बीच-बीच में कवि के सुंदर चेहरे की ओर बंकिम दृष्टि से कटाक्ष करती हुई, वे अस्पृष्ट स्वर में अपनी सहेलियों अथवा पड़ोसिनों से बातें करती हैं। “सुंदर !.... .. बहुत प्यारा !.....” आदि शब्द हृदय के स्वाभाविक उद्वेग के कागस ओठों से बाहर निकल अधिक दूर तक फैल जाते हैं.... .. सुनायी पड़ ही जाते हैं.....

किंतु कवि इस हलचल से उदासीन है। उस के सुमधुर रागों का श्रोताओं पर क्या व कितना प्रभाव पड़ा है, इस का मांह उसे लेश-मात्र नहीं है—कम से कम अब नहीं है। स्यात् वह पहले से ही जानता

कुहासा और किरण]

था कि लोग अवश्य भ्रूम उठेंगे ! लोग भ्रूम उठे हैं, इस पर उसे आश्चर्य नहीं है । उन का भ्रूम उठना अत्यंत स्वाभाविक है । वे यदि बुत बने रहते, कदाचित् तब कवि को आश्चर्य होता.....परंतु यहाँ तो ऐसा कुछ नहीं है । लोग खिल उठे हैं, मुस्करा रहे हैं, कुछ पंक्तियों को दुहरा रहे हैं; विद्यार्थी ढंग के कुछ युवक अपने हाथों के अखबार या कागज मोड़ अपनी पिय पंक्तियों को नाट कर रहे हैं—और ये सब कवि के लिए अत्यंत साधारण बातें हैं । उस के मन में इस सब से कोई गुदगुदी नहीं उठती । मोटे फ्रेम के चश्मे के भीतर से भौंकती उस की दृष्टि उदास पड़ती जाती है और उन के मस्तक पर पड़ी लकीरों की गहराई सुस्पष्ट हो चमकने-सी लगती है । काली अचकन और माथे पर विखरी घुँघराले वालों का लटें कवि के उस ट्रेजिक व्यक्तित्व के रहे-सहे मेक-अप की पूर्ति करती प्रतीत होती हैं.....कवि कुछ सोचने का प्रयास-सा करता दीखता है, परंतु संचित नहीं.....

.....कवि के सामने चिटें आ रही हैं—कवि के पिछले गीतों की फरमाइश ! श्रांता—स्त्री-पुरुष, दोनों वर्ग—कवि से उस के वे पिछले गीत सुनना चाहते हैं जिन्होंने कवि का यह प्रसिद्धि और यह स्थान दिया है । . कवि के 'हिट' गीत.....वे गीत जो कवि के भूतपूर्व जीवन के साक्षी हैं—अतीत की वे सुखद-दुःखद अवशेष सुधियाँ जिन से कवि अब विदा ले चुका है.....उन गीतों का सुनाते हुए आज कवि रोमांचित हो उठता है; एक टंडा सिहरन उस के समस्त शरीर में दौड़ कर उसे जड़ कर जाती है । और पिछले दिनों की पीड़ादायक स्मृतियों—जब कि वह अपना जीवित शव बना घूम रहा था—उस के नेत्र की कोरें भिगा देती हैं.....

अनायास, अजाने कभी-कभी मनुष्य उदास हो उठता है । कवि आज सुबह से ही उदास है । उदास तो वह पिछले तीन दिन से है—

जिस दिन से वह अपने घर, छः सौ मील दूर से यहाँ कवि सम्मेलन में भाग लेने के लिए चल पड़ा था, अपने सुखद् परिवार से अलग छिटक कर। केवल अपने पहले किये गये वायदे के कारण ही; हालाँकि उस का मन इतनी दूर जा कर प्रशंसा अर्जित करने के लिए बिल्कुल नहीं कर रहा था। किंतु विवशता ! संसार में सभ्य और व्यवहार-कुशल बने रहने के लिए बहुत कुछ करना पड़ता है !.....और कवि आज अधिक उदास है ! डेढ़-हजार स्त्री-पुरुषों की इस भाँड़ से घिरे रहने की अपेक्षा वह चार प्राणियों की अपनी छोटी-सी दुनिया में घिरा रहना अधिक पसंद करता। रह-रह कर उसे अपनी पत्नी, अपने दोनों बच्चों, का ध्यान आ रहा है। और वह अनायास ही उदास हो उठा है। एक घुटन-सी वह अनुभव कर रहा है। उसका मन बहल जाय, ऐसा भी कोई कारण उसे नहीं दिखायी दे रहा है। सो वह खिन्न-सा ही है। यह चहल-पहल, ये भ्रू-भंगिमायें, ये संकेत उस के मन में आल्हाद की कोई तरंग दौड़ाने में असमर्थ हैं। कवि के मन पर उदासी के गहरे बादल घिरे हुए हैं, उन का छुट जाना कठिन है। वह अन्यमनस्क है—वैसा ही रहेगा।

अनमने भाव से कवि चिटें देख रहा है—पार्कर ५१, शेफर्स, पेंसिल, पुरुषों की, स्त्रियों की, सुंदर, घसीट.....सब प्रकार की चिटें उस के नेत्रों के सामने से निकल रही हैं। सन् १९३२ से सन् १९४० तक लिखे गये लगभग सभी गीतों की फरमाइश की जा रही है। किस गीत को सुनाया जाय और किसे छोड़ा.....सहसा कवि ठिठक गया है—एक सुंदर चिट उस के सामने है। चिट अभूतपूर्व है—यों कि अभी तक अितनी चिटें वह देख चुका है उन में—[उन की हस्तलिपि में]—वह लावण्य, वह सुषमा और वह सम्मोहन न था जो इस चिट में है, और जिस ने कवि के मन में बहुत नीचे दबे आकर्षण को

कहासा और किरण]

छू दिया है। दो गीतों की परमाइश की गयी है—दोनों अवसाद गीत हैं। हाँ, कवि इस मोग की उपेक्षा नहीं कर सकता। करेगा भी नहीं। हृदय का प्रतिवम्ब इस लिखाई की अवहेलना करना स्यात् उस के 'कवि' नाम के लिए व्यंग्य हो जायगा—ज्ञान, और सौंदर्य की अवहेला ! वह गीत सुनायेगा।

कवि ने चिट नीचे रख स्त्रियों की कुंवार की ओर अनुवीक्षण दृष्टि से देखते हुए कहा, “अच्छा, मैं अब आपको अपना एक बहुत पुराना गीत सुनाता हूँ। यह गीत मैं ने सन् ३४ में लिखा था, जब मुझे क्षय रोग हो गया था और मुझे अपने बचने की कोई आशा न रही थी। लेकिन मैं मरा नहीं, बच गया—यह तो आप देख ही रहे हैं। और इस प्रकार यह ‘अवसान गीत’ अब मुझी पर व्यंग्य बन गया है। इसे सुनाने की इच्छा तो नहीं होती, लेकिन अनेक सज्जनों का आग्रह है—और कुमालु सज्जनों का आग्रह टाला नहीं जा सकता, इस कारण सुना रहा हूँ। सुनिये.....”

कवि ने अपना दृष्टि पूरे स्वा-वर्तक पर दीछा ली। अनेक चेहरे उत्कण्ठा से मिलते हुए थे; किंतु वह चेहरा कौन-सा था जो सचमुच ही उस गीत की प्रतीक्षा कर रहा था ?.....कौन सा ?..... कवि क्षण भर के लिए अशांत हो उठा। गीत की पहली पंक्ति प्राग्भम करते ही उस की दृष्टि सहसा दूसरी पंक्ति में दायीं ओर की पहली दुर्खी पर बैठी, गुलाबी साड़ी वाली एक षोडशी पर पड़ी, कवि से दृष्टि मिलते ही जिस का आँखों की कोरें चमक उठीं और चेहरा अर्द्धक्षण के लिए प्रदीप्त हो उठा। फिर चेहरे पर एक लज्जाजन्य अरुणिम स्मित खेल गयी और धड़कते हृदय से सिर नीचे झुका लिया गया ! निमिष मात्र में कवि ने उसे पहचान लिया। वही थी इन गीतों की माँग करने वाली—निश्चय ही वही थी।

[कुहासा और किरण]

कवि गीत सुना रहा था। उस का दर्दीला-नशीला स्वर माइक से टकरा कर समस्त हॉल में गूँज रहा था तथा श्रोताओं पर बाँझित प्रभाव डाल रहा था। कवि की दृष्टि चारों ओर घूम रही थी—एक बिंदु पर वह कुछ क्षणों के लिए रुक भी जाती थी। पाइशी टकटकी लगा कर कवि के सुंदर मुखड़े को देख रही थी—कवि का मुसड़ा भी कभी-कभी कुछ लमहों के लिए उस पर टिक जाता था। इस के पूर्व कि वह अपनी दृष्टि हटाये, कवि स्वतः ही अपनी दृष्टि दूसरी ओर फेर उस के हृदय की धड़कनों को तेज़ होने से रोक देता था। तब भी उस का हृदय असाधारण रूप से धड़क रहा था।

....किंतु यह सब तो विस्मृति की अवस्था के पूर्व की बात है। कवि अब सब को देखता हुआ, और किसी को भी न देखता हुआ, लीन हो कर अपना गीत सुना रहा था। वह भूल गया था कि वह काँच-सम्मेलन में उपस्थित जनता को गीत सुना रहा है। उसे तो लग रहा था कि वह अपने को हलका करने के लिए जोर से कुछ गुनगुना रहा है—अपनी आप-बीती, अपनी दुःख-विपत्ति का लेखा, नियति की क्रूरता और उस के सम्मुख मनुष्य की परवशता, मानवीय स्वप्नों की क्षण-भंगुरता....और सहसा कवि ने पाया कि आज इतने वर्षों बाद अनायास ही उस की वाणी को वह लोच, वह दर्द, वह धोर निराशाजनित कातरता प्राप्त हो गयी है, जो उस समय उस के कंठ में थी जब वह व्रण-पीड़ित था, और जब यह गीत उस के लिए व्यंग्य नहीं, सत्य था, जब उस ने मानवीय आशाओं व आकांक्षाओं को चारपाई की पाटी पर सिर धुनते, और दो मतवाले नेत्रों के डबडबाते आग्रह को विधाता द्वारा निर्ममतापूर्वक टुकराये जाते देखा था....कवि की आँखों से आँसू बह रहे थे और उस के सम्मुख वे बीते दिन चल-चित्र की भोंति आ-जा रहे थे। किंतु जब वह गीत का

कहासा और क्रिण]

अंतिम पद—जिस में उस ने अपनी पत्नी से विदा ली है—सुनाने लगा तो उस के लिए अपने पर नियंत्रण रखना कठिन हो गया । उस का हृदय भीतर से उमड़ने लगा । सचमुच ही नियति का कितना नीपण व हृदयहीन परिहास था यह !....जिस से कवि ने विदा ली थी, वह कवि से पहले स्वयं ही उस से विदा ले, उसे जीवन के अनिर्देशित पथ पर नितांत एकाकी छोड़ कर सदैव के लिए चली गयी थी !....कवि ने अनुभव किया यह विह्वलता शोभा नहीं देगी । उस ने अपने को संयत करने का सचेष्ट प्रयास किया । स्वयं ही अपने आँसू पोंछे....यही जीवन है । [टूजेडी भी तो यही है ।]

अब कवि ने दृष्टि ऊपर उठायी । लोग इस वेदनापूर्ण गीत से द्रवित अवश्य ही हो गये थे । स्त्री-वर्ग में से अधिकांश की खिलखिला-हट लोप हो गयी थी और एक फैशनेबल ढंग की उदासी उन के चेहरों पर छा गयी थी, जो उन के अंतर की भावना—‘रियली, वेरी सैड !’ [‘सचमुच बड़े दुःख की बात है !’]—को स्पष्टतया व्यक्त करती दीख रही थी । केवल इन्हीं फॉर्मल [औपचारिक] शब्दों को व्यक्त करती हुई—इस से अधिक कुछ नहीं । कवि की दृष्टि अब उसी युवती की ओर फिरी । किंतु यह क्या ? पोंडशी अपनी पड़ोसिन अघेड़ स्त्री की दृष्टि बचा अपने आँसू पोंछ रही थी !....कवि को एक विचित्र-सी अनुभूति हुई—एक ऐसे दुःख की, जिस की कोर की कोर में एक क्षीण-या सुख कहीं छिपा रहता है; तथा उस दुःख व सुख में कौन-सा पलड़ा अधिक भारी रहता है, यह कहना कठिन हो जाता है....और सहसा कवि को लगा कि उसे उस के गीत सुनने की अधिकारिणी मिल गयी है, और अब वह उस अकेली युवती के सुख के लिए ही रात भर गीत सुना सकता है । [कवि-सम्मेलन में उपस्थित सभी व्यक्ति तो कविता सुनने के अधिकारी नहीं होते—बिरले ही उस पीढ़ा

तथा अनुभूति को ग्रहण करने आते हैं, जिस को कवि अपनी नशीली तथा प्रभावशाली वाणी के माध्यम से उन कोरे और भावहीन, निर्व्यक्तिक चेहरों के सम्मुख व्यक्त करता है। ऐसी दशा में यदि एक भी व्यक्तिक, ग्रहणशील चेहरा कवि को दीख पड़ता है तो उसे लगता है कि उसे उस की कविता का सच्चा अधिकारी मिल गया है; और उस का कविता सुनाने का श्रम सार्थक हो गया है....कवि ने अपने अंदर एक स्फूर्ति अनुभव की—एक नया उत्साह; और वही चिट उठा दूसरे गीत की पंक्ति पढ़ खिले स्वर में बोला, “एक और पिछला गीत सुनिये—‘शेष विषाद’। छोटा-सा गीत है....”

कवि ने अत्यंत तन्मयतापूर्वक गीत प्रारम्भ किया। उस की वाणी का खोया दर्द उसे मिल चुका था। गीत का प्रत्येक शब्द वेदना से सन कर उस के मुख से उच्चरित हो रहा था। कवि की यंत्रणाप्रिय प्रवृत्ति जाग गयी थी। स्वयं दुःखी न हो कर, दूसरों को दुःखी करने में उसे एक अनोखा आनंद प्राप्त हो रहा था। लोगों का दुःखी होना जितना स्वभाविक था, उतना ही कवि का आनंदित होना स्वाभाविक था, क्योंकि उस के अभीष्ट की सिद्धि हो रही थी। पुरदर्द गीतों का ध्येय ही सुनने वालों को दुःखी करना होता है।

गीत समाप्त कर, बिना इधर-उधर देखे, कवि ने अपना एक और प्रसिद्ध गीत ‘चौद-सितारे’ प्रारम्भ कर दिया। बार-बार कवि को लग रहा था कि उस की वाणी का विगत दर्द आज इस रात के लिए फिर लौट आया है—वह दर्द जिस ने एक कुमारी जी को उस रात रेडियो का स्विच पकड़ सुबकने के लिए बाध्य कर दिया था, जिस रात कवि ने रेडियो से पहली बार यह गीत प्रसारित किया था। उस रात की भाँति आज की रात भी कवि की वाणी का दर्द, गीत की पंक्ति दर पंक्ति, अधिकाधिक नुकीला और हताश होता जा रहा था। उस

कुहासा और किरण]

दर्दीले स्वर को सुन अपने को उस के साथ बहा देना दुस्तर न था, अपने को रोक रखना दुस्तर था । सहसा, ध्यान-सा आ जाने पर कवि ने षोड़शी-वाला की ओर देखा, और अजाने ही उस की वाणी एकदम साधारण स्तर पर आ गयी...अपनी कुर्सी तनिक पीछे व किनारे सरका कर—यानी अपने को पड़ोसियों द्वारा लक्षित न किये जाने का पूरा प्रयत्न कर—रूमाल अपनी आँखों से लगा वह वाला फूट-फूट कर रो रही थी । रह-रह कर उस का वक्ष रुदन के आवेग से ऊपर उठ आ रहा था; तथा पर्याप्त दूरी के बावजूद कवि का यह सब स्पष्ट दीख रहा था....कवि को अपनी क्रूरता पर खेद हुआ । प्रत्येक व्यक्त के कुछ घटनाओं या स्थलों से चंद एसोसियेशन्स [सम्बन्ध] होते हैं । अपने गीत द्वारा उस ने षोड़शी की न जाने कौन सी दुखती रग को छेड़ दिया है ?...उस की न जाने कौन सी सोर्या पार जगा दी है ?... कदाचित् उस के स्वर में षोड़शी की कोई दुःखद् कहानी मुखर हो उठी है ! तभी तो उस के नयन के कोर बरस उठे हैं और उसे अपने आप को संयत करना कठिन हो गया है । कवि का मन कवि को धिक्कारने लगा । यह तो उस ने कभी न चाहा था । उस का मन करने लगा कि वह कुछ कर डाले जिस से युवती के आँसू थम जाय.... जैसे-तैसे उस ने गीत समाप्त किया और भारी स्वर में यह कह कर— कि वह अब थक गया है, उसे क्षमा किया जाय—माइक से अलग हट गया ।

श्रोतागण तब तक शोर ही करते रहे जब तक दूसरे कवि महादय माइक के सामने न आ गये । हॉल में फिर शांति हो गयी । नये कवि का कविता-पाठ भी प्रारम्भ हो गया; किंतु कविके मन में शांति न हुई । मंच पर उपस्थित अन्य साथी कवि उस से उस की प्रशंसा कर रहे थे; कह रहे थे, “भई, तुम ने तो आज कमाल कर डाला ! अपने को

सँभालना हमारे लिए मुश्किल हो गया !” “बहुत ही सुंदर !” परंतु कवि पर इन बातों का कुछ भी तो प्रभाव नहीं पड़ रहा था । उस के मन में तो एक विचित्र ही-सी उथल-पुथल हो रही थी । अपराध करने के उपरांत पैदा हुई एक ग्लानि का-सा भाव उस के मन को कचोट रहा था; और वह अपने को अपराधी जैसा महसूस कर रहा था । उसे लग रहा था कि हृदय का परगेशन [रेचन] अत्यावश्यक है अन्यथा मन को शांति न मिलेगी; परंतु जब तक सम्मेलन समाप्त नहीं होता, यह कैसे सम्भव हो सकता है ? तब तक तो प्रतीक्षा करनी ही होगी । और यही प्रतीक्षा असह्य है । और यही कारण है कि उस की व्याकुलता बढ़ती जा रही है ।

अब कवि ने कुछ सहमे हुए भाव से श्रोता वर्ग पर दृष्टि डाली और तब कर्नाखियों से उस युवती की ओर भी देख लिया । वह टकटकी लगा कर कवि को निहार रही थी । कुछ क्षण रुक कवि ने साहस कर उस से दृष्टि मिला ली और पाया कि वह, अपनी दृष्टि की दूसरी ओर फेर लेने की अपेक्षा, तब भी उसी भाव से उसे एकटक देख रही है । कवि को लगा जैसे वह दृष्टि शब्दों के उस बाजीगर से—जिस ने उस के मर्म-स्थल के दुखते भाग पर अनायास ही अपनी उँगली रख दी है—कुछ कहना चाहती है । उस दृष्टि में शिकायत का कोई भाव न था, किसी प्रकार का याचना का भी नहीं; निरीह वेदना मात्र—जिस में एक कसक व एक टीस छिपी रहती है—उस दृष्टि में निहित थी । कवि से अधिक न देखा गया । उसने अपनी गर्दन नीची कर ली ।

हॉल में कवितायें पढ़ी जा रहीं थीं । कवि आ-जा रहे थे । कवि-सम्मेलन का कदाचित् अंतिम प्रहर था, क्योंकि कवि के सम्मुख उस के ऑटोग्राफ़ के लिए अनेक दुबली-मोटी, सुंदर-सुदृढ़, कमनीय व

कुहासा और किरण]

लावण्यमयी सेंटेट ऑटोग्राफ-बुक्स आ गयीं थीं । परंतु कवि तो गाव तकिये पर हाथ टेके विचारों के प्रवाह में तिनके-सा बहता जा रहा था । उसे हॉल की गति-विधि का अधिक ध्यान नहीं; केवल इतना ध्यान अवश्य है कि उस से फिर एक बार माइक पर आने की प्रार्थना की गयी थी जो उस ने बहुत सभ्यतापूर्वक अपने गले की असमर्थता जता कर अस्वीकृत कर दी थी, और साथ ही इस के लिए क्षमा भी माँग ली थी । लोग तब भी कुछ देर तक उन्मादग्रस्तों की भाँति उस का नाम पुकारते रहे थे । विवश हो उसे उठना ही पड़ा था और माइक के सामने आ अनिच्छा से दो-एक नये गीत भी सुनाने पड़े थे, जिन में से दूसरे गीत की एक पंक्ति को वह भूल गया था, क्योंकि उस समय उस का मन कविता सुनाने में न था । किसी न किसी तरह फर्ज़-अदायगी पूरी कर वह उठ आया था । लोग तेज़ी से तालियाँ पीट रहे थे, हँस भी रहे थे । कवि की एक पंक्ति के इस अर्थ ने कि 'चाँदनी रात में कुछ भी किया जाय, सब क्षमा-योग्य है' उन के मन को गुदगुदा दिया था । और युवा स्त्रियाँ तो अपनी सहेलियों की ओर देख-देख कर एक शरारती व भँपे ढंग से मुस्करा रही थीं, जैसे कवि ने उन के मन की बात कह दी हो, या जैसे उन की किसी सहेली ने उन का लिखा प्रेम-पत्र उन्हीं के सामने पढ़ दिया हो । और उन के इस ढंग से हँसने से बहुत कुछ ऐसी ही आवाज़ पैदा हो रही थी जैसे कहीं नयी चबन्नियों-अठन्नियों छनक रही हों.....

सम्मेलन के समाप्त होने पर व धन्यवाद की रस्म-अदायगी के पश्चात् श्रोताओं के साथ ही साथ कवि भी उठ खड़ा हुआ । वह मंच

के नीचे पहुँचा ही था कि ऑटोग्राफ-हंटर्स को भीड़ से घिर गया । ऑटोग्राफ के साथ कोई पंक्ति साथ में न लिखने के लिए क्षमा माँगता हुआ कवि एक यंत्र की भाँति खटाखट अपने हस्ताक्षर सब कॉपियों पर करता गया—हस्ताक्षर जो कवि के व्यक्तित्व की ही भाँति आकर्षक और रहस्यमय थे; तथा जो पाँच-छः वर्षों में मौजूदा आकार ले पाये थे । कवि का नाम न जानने वाला व्यक्ति उन्हें कुछ भी पढ़ सकता था अथवा कुछ भी नहीं पढ़ सकता था । उन्हें नागरी के अक्षर भी मान सकता था, अंग्रेजी के भी और फ़ारसी के भी । उसे सब प्रकार की स्वतंत्रता थी । अंतिम कॉपी पर हस्ताक्षर कर कवि को एक क्षणिक मुक्ति का आभास हुआ । दोनों हाथ जोड़ सिर पर लगाता हुआ, उपस्थित देवियों-सज्जनों को नमस्ते कर कवि पिछली गैलरी के द्वार से शीघ्रतापूर्वक बाहर निकल आया और हॉल के बायीं ओर वाले कॉरीडोर में खड़ा हो गया, जिधर से स्त्रियाँ निकल चुकी थीं—निकल रही थीं । उसे अधिक प्रतीक्षा न करनी पड़ी । दो-ही तीन मिनट बाद कवि के आकर्षण व कुतूहल का केंद्र वह षोडशी अपनी अधेड़ माता— [माता ही हो सकती है]—के साथ उधर से निकली । कवि ने अत्यंत सचेत भाव से, जान-बूझ कर, अपनी दृष्टि दूसरी ओर कर ली और ऐसा भाव बनाया जैसे वह इस भीड़ में किसी को ढूँढ़ रहा है, और जैसे उस ने अपने सामने से गुज़रती हुई षोडशी को देखा नहीं है; हालाँकि कनखियों से वह देख चुका था कि युवती बराबर उसे देखती जा रही थी । षोडशी और उस की माता बाहर निकल गयीं । भीड़ भी लगभग समाप्त हो गयी । कॉरीडोर में कवि अकेला रह गया । अब ?..... उस का हृदय बैठने लगा था ।

लगभग पाँच मिनट कवि वैसे ही खोया खड़ा रहा । उस के मन की दशा विचित्र थी । स्यात् वह स्वयं ही नहीं जानता था कि आखिर

कुहासा और किरण]

वह चाहता क्या है ?..... तभी उस ने उसी युवती को बारह-एक वर्ष के बालक के साथ सम्मिलित पगों से अपनी ओर आते देखा । कवि के हृदय की धड़कन अकस्मात् बढ़ गयी । युवती कवि के बहुत निकट आ कर खड़ी हो गयी । एक मादक गंध से कवि का मन-प्राण गमक उठा । तब युवती और बालक ने कवि को नमस्ते की ।

लड़के की शकल से कवि ने अनुमान किया कि वह युवती का छोटा भाई ही हो सकता है । युवती अब तक कवि की ओर ही देख रही थी, अब कवि को अपनी ओर दृष्टि फेरता देख वह नीचे अपने चप्पलों को देखने लगी । कवि ने देखा, युवती सुंदर है—असाधारण नहीं । कवि अनेक सुंदरी, कलाकार, चंचल और डैश रमणियों को देख चुका है, उन के सम्पर्क में भी आ चुका है; लेकिन इस युवती में कुछ ऐसा है, जो उन किसी में न था और जो अनायास ही भावुक मन को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है । एक बहुत ज़बर्दस्त कशिश इस युवती के अंदर मौजूद है—एक विपाद-रंजित सौंदर्य, जो मनुष्य की चेतना के बंद द्वार उन्मुक्त कर उस के हृदय पर अमिट छाप छोड़ जाता है..... युवती का रंग गुलाबी था, और साड़ी भी गुलाबी थी—रंग से रंग मिल रहा था । कवि के लिए यह अनुभूति भी विचित्र थी ।

कुछ क्षणों के विकल्प के पश्चात् युवती कवि की ओर दृष्टि उठा कर महाराष्ट्रियन हिन्दी में बोली, “मैं आप को धन्यवाद देने आयी हूँ.....आप ने मेरे कहे गीत सुनाये । मैं आप की आभारी हूँ ।” उस का स्वर काँप रहा था और उस के आँगों में रोमाँच हो आया था ।

कवि के चेहरे पर मुस्कराहट आ गयी । बोला, “आभारी तो मैं भी आप का हूँ.....” और रुक गया ।

“क्यों, आप क्यों आभारी हैं?” युवती ने कुछ घबराहट से पूछा ।
घबराहट, जिस में एक भोली जिज्ञासा मीलित थी ।

कवि फिर मुस्कराया । कहने लगा, “अपने गीतों से मैं ने प्रशंसा और प्रसिद्धि तो बहुत कमायी है; किंतु मोती की लड़ियाँ तो केवल आप ही ने इन पर वारी हैं.....” फिर कुछ रुक कर युवती के लाल होते हुए चेहरे को और अधिक लाल करने के लिए बोला, “निर्धन की भोली तो आज भरी है—आधा जीवन गीत गा कर गंवाने के बाद !.....बताइये, आप का आभार न माना जाय ?.....”

युवती की आँखों में आँसू छलछला आये । बहुत कठिनाई से दाँतों द्वारा ओठों को भींच उस ने अपनी रुलाई थामने का प्रयास किया । कवि को अपने आप को रोकना कठिन हो गया । उस के मन में आया कि आगे बढ़ कर युवती को अपने वक्त का सहारा दे, उन सुंदर आँखों को बरसने से रोक दे—बरसे हुए मोतियों को समेट ले । किंतु युवती के भाई की उपस्थिति के कारण वह अपने आप पर ही कुदता हुआ, नियति को कोसता, विवश खड़ा रहा । आज दूसरी बार उस ने अनुभव किया कि वह कितना अधिक असमर्थ है ! इच्छा करते और शक्ति रखते हुए भी वह कुछ नहीं कर सकता ।

अनेक स्वर्णिम क्षण इसी प्रकार मूक व्यतीत हो गये । सहसा युवती के छोटे भाई ने अपनी बहिन का ध्यान माँ की ओर आकर्षित किया,

“दीदी, माँ आ रही हैं ।”

युवती ने चौंक कर माँ की ओर देखा और तत्काल उसे अपनी परिस्थिति; कुल, शील, मर्यादा, परिवार की नाक, घर का मान-सम्मान, युवावस्था की परवशता—सब का ध्यान आ गया । माँ की संदेहशील —[आशंकित ही सही]—दृष्टि को उस ने दूर ही से भाँप लिया था । अपने को प्रकृतिस्थ कर बोली, “आप कब तक यहाँ हैं ?”

कुहासा और किरण]

स्पष्ट था कि प्रश्न माँ को सुना कर ही पूछा जा रहा था—एक स्पष्टीकरण के साथ कि ‘देख लो, मैं कवि से जनरल इंटरेस्ट [साधारण ढङ्ग] की ही बात कर रही हूँ, कोई व्यक्तिगत नहीं। तुम मेरे विषय में अन्यथा न सोचो। यों सशंक नेत्रों से मेरी ओर मत देखो!’

क्योंकि माँ निकट आ गयी थी, इस कारण कवि ने पहले माँ का नमस्ते की, तब भारी गले से उत्तर दिया, “अधिक छुट्टी न मिल सकी। बस, आज ही की रात यहाँ हूँ। कल अपराह्न में चला जाऊँगा।”

षोडशी का चेहरा विवर्ण हो गया। कवि दूसरी ओर देखने लगा।

“कविता, अब चलो। अधिक रात हो रही है।” युवती की माँ ने युवती से कहा और कवि को सम्बोधित कर बोली, “अच्छा हमें आज्ञा दें। नमस्कार।”

कवि का सिर हिला। उस ने हाथ जोड़ दिये। बोला कुछ नहीं।

युवती कवि को देखती हुई उसी प्रकार खड़ी रही—कुछ क्षण—जैसे उस ने अपनी माँ की बात सुनी ही नहीं है।

और सहसा कवि के मन में आया कि वह युवती को बहुत स्नेह से समझाये....उस ने कहना चाहा कि ‘जग-जीवन में रागों का यह नाता क्षण-भंगुर होता है। दुःखी व्यक्ति अपने उर की अधूरी साधों की पूर्ति ढूँढते रहते हैं और जीवन में मलिनता व विषाद भर लेते हैं। जरा सोचो, भला इस से क्या लाभ? सुखी वही है जो बीते को बिसराता हुआ चले। तुम भी.....’ किंतु कह न सका। असमर्थता फिर उभर आयी।

युवती ने कुछ चेतना की। डबडबाये नेत्रों से कवि को देखती हुई उस ने अत्यंत कमनीयतापूर्वक हाथ जोड़ कवि को मूक नमस्ते की। उस के रेशमी ओठ फड़फड़ाये अवश्य थे, किंतु स्पष्ट कोई शब्द उन से

बाहर निकल कवि को न सुनायी पड़ा । प्रत्युत्तर में कवि ने भी नमस्कार की । तब छोटे भाई ने भी हाथ जोड़ दिये ।

एक विह्वल दृष्टि युवती ने कवि पर डाली और तेज़ी से मुड़ मों के निकट आ कर अपनी माँ और भाई के साथ आगे चलने लगी । उस दृष्टि में कितनी कातरता थी ! कितनी टीस !....कवि भर आया ।

....उस ने दृष्टि उठा सामने देखा । अपनी माँ और भाई के साथ युवती संतुलित ढंगों से बाहर जा रही थी । उस का सजा हुआ कवरी-बंध—जिस में उस ने रजनीगंधा की एक लम्बी-सी पुष्पयुक्त कोंपल सुरुचिपूर्वक खोस रखी थी—कवि से क्षण-प्रति-क्षण दूर होता जा रहा था । कवि अनिमेष नेत्रों से उस सजे हुए कवरी-बंध को देखता रहा, यहाँ तक कि उसे भास होने लगा कि उस के चारों ओर अभेद्य कुहरा छा गया है, और उस के चश्मे के शीशों पर धुंध बुरी तरह जमा हो गयी है जिस के कारण उस के लिए सामने कुछ भी देखना असाध्य हो गया है, गो कुहरा या धुंध कहीं भी न थी, अलबत्ता कवि की आँखें अवश्य ही बड़े-बड़े आँसुओं से रूँध गयी थीं.....

*

*

कवि-पत्नी उठ कर बैठ गयी । एक अभ्यस्त मुस्कराहट उस के चेहरे पर आ गयी ।

कवि ने किंचित आश्चर्य से कहा, “अरे, तुम अभी तक सोयीं नहीं ?”

“नहीं, आप की बात देख रही थी ! बच्चे भी अभी-अभी ही सोये हैं । आया और रसोईया अभी तक तो यहीं बैठे हुए थे—कोई पाँच-एक मिनट पहले तक । अब शायद उठ कर घर गये हैं । मैं लेटी स च रही थी कि अब आप आने ही वाले होंगे ।” फिर कुछ क्षण रुक कर बोली, “क्या बात, देर बहुत हो गयी आज !”

कुहासा और किरण]

“हाँ” कवि ने थके हुए स्वर से कहा, “आज कॉन्फ्रेंस का आखिरी दिन था। दिन का सेशन पाँच बजे के बजाय सात बजे ख़तम हुआ। फिर चाय, फोटो-ग्रुप और डिनर। अब हूँ ही मिल सकी।” वह वहीं अपनी पत्नी और बच्चों के पलंग पर बैठ गया।

माथे पर आयी बाल की लट को पीछे करते हुए कवि-पत्नी ने रूटीन के ढंग पर पूछा, “अब आप क्या करेंगे?”

कवि ने सोचते हुए-से कहा, “कोई खास काम नहीं। कुछ चिट्ठियाँ लिखनी हैं। कुछ के जवाब देने हैं। बस, फिर कपड़े बदल, ब्रश कर सोने चला जाऊँगा। आज ज़रा थक गया हूँ।”

“प्रेम-पत्र लिखने हैं?” कवि-पत्नी ने मज़ाक किया। यह मज़ाक विवाह के बाद से चलता आ रहा था।

“हाँ” कवि मुस्कराया।

“ओह!” जम्हाई लेते हुए कवि-पत्नी का अकस्मात् जैसे ध्यान आ गया, “आज तो मैं भी बुरी तरह थक गयी हूँ। देखिये, दिन में आप के जाने के बाद मैं ने कितना काम किया। दोनों ईजी-चेयर के केन ठीक करवाये—वो कुर्सी बुनने वाला आज आ गया था। फिर डाइनिंग टेबल पर रंग करवाया। ड्राइंग-रूम की बड़ी दरी भाड़ने का नम्बर भी आज आ ही गया। मैं ने और आया ने—दोनों ने—बाहर लॉन में ले जा कर ख़ूब भाड़ी। आप की टेबल की भी बहुत दिनों बाद सफ़ाई हुई। कमरे में अच्छी तरह भाड़ू लगवा, दरी, कालीन वगैरा बिछवा कर निबटे थे कि धोबी आ गया—उस के साथ बैठ कर सारे कपड़े मिलाये, पिछले महीनों का हिसाब किया और धुलने को कपड़े दिये। फिर सारे ड्राइंग-रूम में फ़िल्ट किया। और राजीव को आगे के दो लैसन पढ़ाये—कल टेस्ट है उस का। तब कहीं सॉस लेने

की फुर्सत मिली.....इस सब से मैं बुरी तरह थक गयी हूँ ।” उस के स्वर में कोई अत्युक्ति न थी ।

“सचमुच, थक गयी होगी” कवि ने अपने स्वर में सहानुभूति लाते हुए कहा । फिर प्यार से अपनी पत्नी के गाल थपथपाता हुआ बोला, “तुम अब आराम करो । सुबह तुम्हें फिर जल्दी उठना पड़ेगा—राजीव की स्कूल-बस तो छः बजे ही आ जाती है । अब ज्यादा न जागो, सो जाओ ।”

“थैंक्स !” कवि-पत्नी ने कृतज्ञ स्वर में कहा, और करवट लेती हुई बोली, “आप के बदलने के कपड़े वहीं सूटकेस पर रख दिये हैं । और आप का दूध आप की मेज पर रखा हुआ है । पी लीजियेगा..... अच्छा, गुड नाइट डार्लिंग !”

“गुड नाइट !” कहते हुए कवि की दृष्टि अकस्मात् करवट ले कर लेटी हुई अपनी पत्नी के कबरी-बंध पर पड़ गयी, जिस में उस ने लापरवाही से रजनीगंधा की एक पुष्पयुक्त कॉपल खोस रखी थी । कवि निस्पंद रह गया जैसे उस की चेतना को विद्युत-करेंट ने छू लिया हो । उस का मस्तिष्क कुंद हो गया और उस में कुछ भी सोचने-विचारने की शक्ति न रही । उस की रीति दृष्टि के सामने एक कुहरा-सा छाने लगा, जिस के बीचो-बीच रजनीगंधा से सुसज्जित एक कबरी-बंध क्षण-प्रति-क्षण उस से दूर-दूर होता जा रहा था । और जब वह कबरी-बंध एक बिंदु मात्र रह अंततः कोहरे में ही विलीन हो गया, तो कवि को ऐसा लगा जैसे किसी ने अंजलि भर रजनीगंधा के कोमल पुष्प उस की छाती पर मसल डाले हों । पथरायी दृष्टि से नीचे की ओर देखता हुआ वह पत्थर की शिला की भाँति देर तक उसी कोहरे के आवरण में लिपटा बैठा रहा.....

.....और जब कोहरा साफ हुआ तब कवि को अपने आप को

कुहासा और किरण]

संयत् रखना कठिन हो गया। एक बुलबुला सा उस के मन में फूटा, इस तरह जैसे जलती आग में गंधक का पाउडर डालने से एक शोला-सा लपक उठता है। उस का जी चाहा कि वह ये सब मिथ्यासांसारिक बंधन तोड़ सीधा उसी दम उसी षोडशी के पास पहुँच जाय जिस को ले कर उस का मन सुधियों के स्वप्न बुन रहा है। स्यात् युवती की भी यही मनोदशा हो—क्या उस के कानों में कवि का नशीला गीत न गूँज रहा होगा ?..... दो हृदयों के स्वाभाविक आकर्षण के बीच मिथ्याचार और सांसारिकता की दीवारें क्यों ? क्या यह सम्भव नहीं कि वह उस आकर्षणमयी के साथ, संसार के इन कृत्रिम बंधनों व ढकोसलों से दूर, नील स्वच्छंद गगन में मुक्त भाव से भेंट कर सके; उस की पीड़ा को समझने का प्रयास कर सके; उसे अपना सौहार्द, अपनी सहानुभूति, अपना साहचर्य दे सके ?..... किंतु इस रूढ़िवादी, परिपाटीमय लकीर के फकीर समाज में यह किस प्रकार सम्भव हो सकता है ! यह बात कभी उचित न मानी जायगी। यह तो अधर्म का आचरण होगा !.... कवि के मन में आया कि वह क्या कर डाले, क्या न कर डाले ?.... किस तरह उस षोडशी का नैकट्य प्राप्त कर ले !.... असमर्थताजन्य बेचैनी से वह तिलमिला उठा।

सहसा उस की दृष्टि अपनी सोयी पत्नी व बच्चों पर पड़ी। दूसरे ही क्षण उस की विवेक-बुद्धि जाग उठी। सामने उस की पत्नी लेटी हुई है जो उस के प्रति सच्ची और ईमानदार है। क्या इस भोली-भाली रमणी से छल करना, तथा उसे चोट पहुँचाना व दुःख देना उसे शोभा देगा ?.... अपनी पत्नी के साथ किया गया प्रण भी उसे याद आया—‘हम दुनिया को शुचि-सुंदरतर बनाने से अपना मुँह कभी न मोड़ेंगे। दुनिया को, जैसी हम ने पायी है, उस से कहीं बेहतर बना छोड़ेंगे; क्योंकि अपने जीवन-काल तक ही इस से हमारा नाता नहीं है—हमारे

बाद इस में रहने व पनपने के लिए हमारे बच्चे हैं.....' कवि को अपनी एक और कविता का ध्यान भी आ गया जिस में उस ने लिखा था कि 'यदि मेरा मन मुझे नियंत्रित न कर रखता तो कदाचित् जीवन से निर्भर भी शरमाता.....' उसी मन को पहले की भाँति अब भी कवि को नियंत्रित करना होगा। आखिर वह शहर का एक प्रतिष्ठित नागरिक है, देश का विख्यात कवि है, अनेक नवयुवकों का आदर्श है, सांसारिक चलन की दृष्टि से वह मद्गृहस्थ है, उस की पत्नी है, तथा दो बच्चों का वह पिता है—पिता, प्रेमी नहीं.....और कवि की आँखों में आँसू आ गये.....उसे इस भावुकता व विह्वलता को कुचलना ही होगा।

अपने को समहालता हुआ कवि उठ खड़ा हुआ। डगमगाते पगों से उस ने ड्राइंग-रूम में प्रवेश किया और अपनी मेज की ओर बढ़ा। कुछ क्षण अनिश्चय की अवस्था में खड़े रह उस ने टेबल-लैम्प जलाया और पैड स्वीच लिखने बैठ गया—कदाचित् अपने जीवन का सब से कातर गीत—'भावाकुल मन की कौन कहे मजबूरी ?

